एम.ए. हिंदी पूर्वार्द्ध प्रथम सेमेस्टर

MAHN 101

भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा

निदेशालय, दूरस्थ शिक्षा

गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय विज्ञान और प्रौद्योगिकी

हिसार

एम.ए. हिंदी पूर्वार्द्ध प्रथम सेमेस्टर

सत्र से प्रभावी

समय–3 घंटे **कुल अंक : 100**

लिखित परीक्षा : 80

आंतरिक मूल्यांकन : 20

प्रश्न–पत्र–1 भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा

निर्देस :

1. पाठ्यक्रम चार खण्डों में विभक्त है। प्रत्येक खण्ड से दो आलोचनात्म प्रश्न पूछे जांएगे, जिनमें से किसी एक का उत्तर देना होगा। इनके लिए 48 (4 × 12) अंक निर्धारित है।
2. समूचे पाठ्यक्रम पर आधारित दस लघूत्तरी प्रश्न पूछे जायेंगे, जिनमें से किन्ही पांच प्रश्नों के उत्तर देने होंगे। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 250 शब्दों में देना होगा। इनके लिए 20 (5 × 4) अंक निर्धारित है।
3. समूचे पाठ्यक्र पर आधारित बारह वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछे जायेंगे, जिनके लिए 12 (1 × 12) अंक निर्धारित है। इस प्रश्न में कोई विकल्प नहीं होगा।

पाठय विषय :–

खण्ड क) भाषा और भाषा विज्ञान

भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण, भाषा–व्यवस्था और भाषा–व्यवहार, भाषा–संरचना और भाषिक प्रकार्य, भाषा विज्ञान, स्वरूप एवं व्याप्ति भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं–वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक, साहित्यके अध्ययन में भाषा विज्ञान के अंगों की अपयोगिता।

खण्ड ख) स्वन विज्ञान

स्वन विज्ञान का स्वरूप और शाखाएं, माग्यन्त्र और उनके कार्य, स्वन की अवधारणाा और स्वनों का वर्गीकरण, स्वनगुण : स्वनिक परिवर्तन, स्वनिम विज्ञान का स्वरूप, स्वनिम की अवधारणा, स्वनिम के भेद, स्वनिमिक विश्लेषण।

खण्ड ग) रूप विज्ञान

रूप–प्रक्रिया का स्वरूप और शाखाएं, रूपिम की अवधारणा और भेद : मुक्त, आवद्ध, अर्थदशाएं और संबंधदशएं रूपिम के भेद और प्रकार्य।

खण्ड घ) वाक्य विज्ञान एवं अर्थ–विज्ञान

वाक्य की अवधारणा, अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद, वाक्य के भेद, वाक्य विश्लेषण : निकटस्थ अवयव विश्लेषण, गहन संरचना और बाह्य संरचन, अर्थ की अवधारणा, शब्द और अर्थ का संबंध प्र्यायता, अनेकार्थता, विलोमता, अर्थ–परिवर्तन : कारण एवं दिशाएं।

एम.ए. हिंदी पूर्वार्द्ध प्रथम सेमेस्टर

कोर्स कोडः एम.ए. – 101

सामग्री संकलन एवं लेखन– डॉ0 राजपाल सहायक प्रो0 हिंदी

विषय सूची

क्र0 सं0	विषय / शीर्षक	पृष्ठ सं0
1.	भाषा और भाषाविज्ञान	5–30
2.	स्वन विज्ञान स्वरूप और शाखाएं	31–67
3.	रूपविज्ञान	68–78
4.	वाक्य विज्ञान एवं अर्थ विज्ञान	79–109

हिंदी विज्ञान और हिंदी भाषा	
एम. ए. हिंदी	कोर्स कोड़ : एम. ए. – 101
समग्री संकलन एवं लेखन – डॉ. राजपाल सहायक प्रो0 हिंदी	विश्लेषक –
खंड–क	अध्याय – 1

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 विषय प्रस्तुति

1.3 सारांश

1.4 संकेत शब्द

1.5 स्वः मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.6 संदर्भ सामग्री

1.0 उद्देश्य

आप गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय विज्ञान और प्रौद्योगिकी हिसार के दूरस्थ शिखा निदेशलय द्वारा संचालित पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष के प्रथम प्रश्न पत्र भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा की संरचना से संबंधित पाठ्यक्रम की इकाइयों का अध्ययन करने जा रहे है। प्रथम खंड क भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण से संबंधित से है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- भाषा और अभिव्यक्ति के अंतःसंबंधों को जान सकेंगे।
- भाषा की परिभाषा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- परिभाषा की व्याख्या की समझ विकसित कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक समाजिक प्राणी है, अतः समाज में रहते हुए सदा विचार–विमर्श की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप में भावाभिव्यक्ति के सभी साधनों को भाषा की संज्ञा दी जाती हैं भावाभिव्यक्ति संदर्भ संदर्भ में हम अनेक माध्यमों को सहारा लेते हैं; जैसे–स्पर्श कर, चुटकी बजाकर, आँख घुमा या दबाकर, उँगली को आधार बनाकर, गहरी साँस छोड़कर, मुख के विभिन्न अंगों के सहयोग से ध्वनि उच्चारण कर आदि। भाषाविज्ञान भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन से संबंध रखता है। इस विषय की जानकारी प्राप्त करने से पहले आप को भाषा क्या होती है और भाषा की परिभाषा क्या है, जानना आवश्यक है। इस इकाई के अध्ययन से आप को आगे की इकाइयों का अध्ययन करने में सुविधा होगी।

1.2 विषय प्रस्तुति :–

1.2.1 भाषा :–

भाषा शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। सामान्य रूप से भाषा उन सभी माध्यमों का बोध कराती है जिनसे भाषा की अभिव्यंजना होती है। वह भाषा का व्यापक

पक्ष है, इस दृष्टि से पशु पक्षियों की बोली और हमारे द्वारा किए गए संकेत सड़क की लाल और हरी बत्ती ये सब भाषा के व्यापक सीमा में आ जाते हैं लेकिन भाषा विज्ञान में जिस भाषा का अध्ययन किया जाता है वह मनुष्यों की भाषा है। यद्यपि हम संकेतों के माध्यम से काफी हद तक अपना जीवन व्यवहार चला सकते लेकिन मन के सूक्ष्म भावों और विकारों की पूर्ण और स्पष्टता के साथ संकेतों द्वारा हम प्रकट नहीं कर सकते। इसलिए मनुष्यों को एक स्पष्ट एवं पूर्ण भाषा चाहिए।

अर्थबोध करने के लिए संकेतों के अतिरिक्त कई प्रकार के चिन्हों से भी काम चलाया जा सकता है। जैसे— रूकावट या नाविक और सैनिक झंडे की सहायता से अपने संदेश एक—दूसरे को देते हैं, गार्ड के द्वारा हरी या लाल झंडी दिखाना भी गाड़ी के चलाने और रोकने का आदेश समझा जाता है लेकिन अर्थबोध के ये सभी साधन पूर्णता और स्पष्ट को प्राप्त नहीं करते इसलिए मनुष्य को एक व्यक्त वाणी की आवश्यकता महसूस होती।

भाषा शब्द संस्कृत की भाषा धातु से बना है। पाणिनी की अष्टाधयी में धातु पाठ के अंतर्गत कहा गया है। भाषा व्यक्तायाम वाचि अर्थात मनुष्य के द्वारा व्यक्त की गई वाणी ही भाषा है। यह भाषा वाचिक होती है। मनुष्य अपने विभिन्न भावों एवं विचारों को इसी भाषा के माध्यम से प्रकट करता है।

1.2.2 भाषा की परिभाषा :—

किसी भी वस्तु को परिभाषा में बांधना बहुत कठिन कार्य है। क्योंकि कोई भी वस्तु परिभाषा में बंधकर अपनी पूर्णता को अभिव्यक्त नहीं कर सकती। परिभाषा में कुछ न कुछ कमी अवश्य रह जाती है। किसी भी वस्तु को परिभाषित करते समय तीन दोषों से बचना चाहिए।

1. अव्याप्ति : —

जितनी सीमा पर परिभाषा लागू होनी चाहिए, उतने पर वह परिभाषा लागू नहीं होती। उसे अव्याप्ति दोष कहते हैं। जैसे— वेदों को जिसने पढ़ा है, वही मनुष्य है। मनुष्य की इस परिभाषा में अव्याप्ति दोष है। क्योंकि वेद को पढ़ने वाला मनुष्य है।

2. अतिव्याप्ति :–

जितनी सीमा तक परिभाषा लागू होनी चाहिए उससे अधिक पर यदि लागू हो जाये, तो उसमें अव्याप्ति दोष होती है। जैसे– जिसके दो नेत्र है वही मनुष्य है। परिभाषा के अन्तर्गत पशु–पक्षी भी आने लगे हैं। इसलिए यहां अतिव्याप्ति दोष है।

3. असंभव :–

जब बनाई गई परिभाषा किसी पर भी लागू नहीं होती तब असंभव दोष होता है। जैसे– मनुष्य उसे कहते हैं कि जिसके दो सिर हो। संसार में ऐसा होना असंभव है।

इन तीनों दोषों से हटकर भाषा की परिभाषा देना कठिन कार्य है। इसलिए हमारे भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा की अनेक परिभाषाएं दी हैं। जिनकी समालोचना करने पर वे निर्दोष प्रतीत नहीं होती। कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में हर परिभाषा में कोई न कोई त्रुटि या न्यूवता अवश्य पाई जाती है। भाषा अनन्त शब्दों की अविराम यात्रा है।

भाषा को परिभाषित करने में भारतीय एवं पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों का बहुत बड़ा योगदान है।

1.2.3 भारतीय परिभाषाएं :–

भारत के ही नहीं, अपितु विश्व के प्रथम भाषा वैज्ञानिक यास्क मुनि ने अपने निरूक्त शास्त्र में भाषा की कोई परिभाषा नहीं दी है। उन्होंने शब्दों और ध्वनियों पर अर्थ, और उसके प्रभाव पर आदि पर बहुत गंभीरता से विचार किया है।

संस्कृत भाषा के महान व्याकरण आचार्य पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में ध्वनि उसके उत्पादन शब्द, रूप, धातु आदि पर नितांत वैज्ञानिक ढंग से विचार किया है। किंतु उन्होंने भी भाषा को परिभाषित करने की आवश्यकता नहीं समझी। शायद उनके समय में भाषा सामान्य रूप, व्यक्तिगत और सामाजिक पक्ष में स्वयं परिभाषित हो चुकी थी,

आचार्य पाणिनी के बाद कात्यायन ने भी भाषा की कोई परिभाषा नहीं दी है। महामुनि पंतजलि ने अपने महाभाष्य में भाषा के तत्व शब्द पर विचार करते हुए उसे परिभाषित किया है. ..... अथ कः शब्द :....।

अर्थात् जिस शब्द का उच्चारण करते ही मानसिक सत्ता और प्रत्यय के रूप में अर्थ विद्यमान हो जाए तथा उस वस्तु का बोध हो जाए जिसके संदर्भ में वह शब्द कहा गया है, उसे शब्द कहते हैं।

प्राचीन भारतीय परम्परा के बाद आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों एवं वैयाकरणों ने अपने–अपने ढंग से भाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है––––

1. श्री कांताप्रसाद गुरू –

यह हिन्दी के प्रथम वैयाकरण लेखक हुए हैं और उन्होंने अपने वैयाकरण में कहा है कि भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने भावों और विचारों को दूसरे के समक्ष लिखकर या बोलकर प्रकट कर सकता है और दूसरों के भावों और विचारों को ग्रहण कर सकता है।

2. डॉ भोलानाथ तिवारी –

इन्होंने अपने भाषा विज्ञान के भाषा की परिभाषा में लिखा है – भाषा उच्चारणावयवों से उच्चरित अध्ययन विश्लेषणीय यादृच्छिक ध्वनि–संकेतों (प्रतीकों) की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा एक समाज के लोग अपने भावों और विचारों को परस्पर आदान–प्रदान करते हैं।

3. डॉ. बाबूराम सक्सेना –

जिन ध्वनि चिन्हों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार–विनिमय करता है। उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।

4. आचार्य किशोरीदास बाजपेयी –

आचार्य जी ने अपने भारतीय भाषा विज्ञान में लिखा है–...... विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरे के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते है।

5. डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा –

इन्होंने भाषा विज्ञान की भूमिका में लिखा है जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार–विनिमय या सहयोग करते हैं। उस यादृच्छिक, रूढ़, ध्वनि–संकेत की प्रणाली को भाषा कहते हैं।

6. डॉ रत्नचन्द्र शर्मा –

इन्होंने अपने ग्रंथ भाषा विज्ञान और मानक हिन्दी भाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है– भाषा––––यादृच्छिक ध्वनि–प्रतीकों की वह व्यवस्था है जो परम्परागत है और जिसके द्वारा उस भाषा–भाषी समाज के लोग परस्पर विचार–विनिमय करते हैं।

इन विद्वानों के अतिरिक्त डॉ. उदय नारायण तिवारी, डॉ राजमणी शर्मा, डॉ धीरेन्द्र वर्मा जैसे मूर्धन्य विद्वानों ने भी भाषा को प्रायः इसी प्रकार परिभाषित किया है।

1.2.4 पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएं :–

यूरोपीय विद्वानों ने भी बहुत गंभीरता से भाषा पर विचार किया है। जिनमें कुछ विद्वानों की परिभाषाएं इस प्रकार हैं–––

1. ए.एच. गार्डिनर – The common deffination of speech is the use of articilat sound symbols for the expression of thought अर्थात् विचार की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों के व्यवहार को भाषा कहते हैं।

2. हेनरी स्वीट – language may be defined as the expression of thought by means of speech sound symbols.

विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए जिन ध्वनि प्रतीकों की सहायता ली जाती है वही भाषा है।

3. मेरियो ए. पेई तथा फ्रांस गयनोर डिकस्नरी ऑफ लिगविस्टिकस Dictonary of languagestic में कहा है ————

A system of communication of by sounds through the orgains of speech and heaning among human beings of a certain of community, using vocal symbol passions or arbrtry conventional means.

मनुष्य के वर्ग विशेष में आपसी व्यवहार के लिए प्रयुक्त वे व्यक्त ध्वनि संकेत, जिनका अर्थ पूर्व निर्धारित एवं परम्परागत है। तथा जिनका आदान–प्रदान जिह्वा और कान के माध्यम से होता है। उन्हें भाषा कहते हैं।

इन सभी परिभाषाओं के तथ्यों के आधार पर यदि हम सहज परिभाषा देना चाहे तो कह सकते हैं कि भाषा वाग्यंत्र से उच्चरित एवं यादृच्छिक तथा रूढ़ ध्वनि–प्रतीकों की वह सुनिश्चित व्यवस्था है जिसके माध्यम से उस भाषा–भाषी समाज के लोग व्यक्तिगत, सामाजिक और सामान्य तौर पर आपस में जीवन का व्यवहार करते हैं।

1.2.5 भाषा के अभिलक्षण :–

1. विभिन्न परिभाषाओं का अनुशीलन पर तीन बातें विशेष रूप से उभर कर सामने आती है———

1. भाषा ध्वनि संकेत हैं।

2. भाषा के ध्वनि– संकेत यादृच्दिक है।

3. हर ध्वनि–संकेत रूढ़ होते हैं।

1. भाषा को ध्वनि–संकेत इसलिए कहा जाता है ताकि वह भावों को व्यक्त करने वाले अन्य साधनों (इशारा) से अलग समझी जा सके।

2. भाषा यादृच्छिक संकेत हैं अर्थात् उस शब्द और अर्थ में कोई तर्कसंगत आधार और संबंध नहीं होता। उदाहरण– गाय को गाय क्यों कहते हैं? इसका कोई तर्कसंगत उत्तर हमारे पास नहीं है, यदि ध्वनि संकेत और उससे बोधित होने वाले अर्थों और पदार्थों में कोई निश्चित संबंध होता है तो संसार की सभी सांसारिक पदार्थों के लिए एक जैसी ध्वनि प्रयोग में लाई जाती है। उदाहरण – संस्कृत में कुत्ते के श्व, हिन्दी में कुत्ता अंग्रेजी में डॉग, रूसी में शबांका, फ्रांसीसी में श्यां जर्मनी में हुन्द।

3. भाषा के ध्वनि–संकेत किसी विशेष अर्थ में परम्परा से प्रसिद्ध हो जाते हैं। इसी को रूढ़ कहते हैं। तर्कहीन प्रयोग प्रवाह की रीढ़ कही जाती है।

ध्वनियां हमारे वाग्यंत्र से निकली है और ये सभी उच्चारण की अपेक्षा रखती है। इसलिए भाषा का प्रमुख अर्थ है उच्चरित या वाचिक। भाषा विज्ञान में प्रधान रूप से इसी वाचिक भाषा का अध्ययन किया जाता है। भाषा के तीन पक्ष होते हैं।

1. व्यक्तिगत पक्ष 2. सामाजिक पक्ष 3. सामान्य पक्ष।

1. व्यक्तिगत पक्ष में इसको वाणी कहते हैं। कुछ प्रबुद्ध लोग।

2. सामाजिक स्तर पर जब व्यक्ति आपस में भाषा का आदान–प्रदान करता है।

3. सामान्य पक्ष में मनुष्य मात्र की भाषा का बोध कराती है। सामान्य स्तर पर पहुंच कर भाषा संप्रेषण का व्यापक साधन बन जाती है और भाषा संबंधित जो जटिल प्रक्रिया है अर्थात् ध्वनन, श्रवनन् इत्यादि सबका वह बोध कराती है। इसी को आर्ध भाषा कह सकते हैं।

इस प्रकार भाषा व्यक्तिगत स्तर से होती हुई सामान्य स्तर तक तथा सामान्य स्तर से होती हुई अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुंच जाती है।

1.2.6 भाषा की व्यवस्था और उसकी संरचना–

विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों की परिभाषाओं का सम्यक अनुशीलन करने के बाद भाषा की जो एक सामान्य परिभाषा बनाई जा सकती है वह है–

भाषा वाग्यंत्र से उच्चरित, यादृच्छिक एवं रूढ़ ध्वनि–प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से इसी भाषा–भाषी समाज के लोग परस्पर विचार–विनिमय करते हुए जीवन को व्यवहार चलाते हैं।

इस दृष्टि से भाषा साधन भी हैं और साध्य भी, उसका साधन रूप तो स्पष्ट है। भाषा इस रूप में साध्य है कि वह हमारे व्यक्तित्व का परिचायक बनती है और उसे सीखना पड़ता है।

भाषा व्यवस्था से तात्पर्य यह है कि भाषा के विभिन्न घटकों या तत्वों में इस प्रकार की व्यवस्था स्थापित करना जिससे वह वक्ता के अभिप्राय या मनोभावों को पूर्णता और स्पष्टता के साथ व्यक्त कर सके। भाषा में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य और अर्थपक्ष होते हैं, इन्हीं की व्यवस्था को भाषा व्यवस्था कहते हैं। भाषा व्यवस्था को भाषा व्यवस्था कहते हैं। भाषा व्यवस्था के निम्नलिखित सोपान है–

1.2.6.1 मनोवैज्ञानिक व्यवस्था :–

जब मनुष्य इस दृष्टि गोचर संसार में वस्तुओं को देखता है तो उसकी बुद्धि उस वस्तु का एक बिम्ब उपस्थित होता है। बुद्धि के साथ आत्मा बाहरी वस्तुओं को देखकर बोलने की इच्छा से मन को प्रेरित करती है। मन हमारी शारीरिक शक्ति पर दबाव डालता है। इसी दबाव के कारण हमार प्राणवायु में प्रेरणा पैदा होती है। और प्राणवायु फेफड़े से होती हुई वागयंत्र में पहुंचकर अनेक प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न करती है। इस प्रकार भाषा की मनोवैज्ञानिक व्यवस्था में सबसे पहला स्थान ध्वनन् का है। इस ध्वनन् में बुद्धि, आत्मा, मन और प्राणवायु का सहयोग होता है, पाणिनिय शिक्षा में–––––

आत्मा बुद्धया समेत्यर्यान, मनोयुङ्क्ते विवक्षया।

मनः कायोग्निमाहन्ति, स प्रेरयति मारूतम्।।

मारूतः तु उरसिचरन्, मंद्रजनय जनयति स्वरम।

भाषा में सबसे पहला स्थान ध्वनन् का है। इस ध्वनन् प्रक्रिया में आत्मा से व्यक्ति का चेतना पक्ष, बुद्धिसे ज्ञान पक्ष, मन से प्रेरणा पक्ष और प्राणवायु के संचरण, निर्गमन और अवरोध से शारीरिक पक्ष की बात कही है।

भाषा का दूसरा पक्ष श्रवनन् है जब ध्वनन् होता है तो श्रोता अपनी श्रवण से उसका श्रवनन् करता है।

इस प्रकार श्रवनन् और ध्वनन् प्रक्रिया के द्वारा एक व्यवस्थित भाषा वक्ता और श्रोता के बीच में संबंध कायम करती है।

वक्ता के मन में पहले प्रत्यय उत्पन्न होता है और वह प्रत्यय शाब्दबिम्ब (संकेत) के रूप में उपस्थित होता है और वही शाब्दबिम्ब ध्वनन् के रूप में परिणीत होता है। फिर श्रोता उसे सुनकर ध्वनिक बिम्ब के रूप में ग्रहण करता है और उसके (श्रोता) के मन में वही प्रत्यय उत्पन्न हो जाता है जो वक्ता के मन में है।

(प्रत्यय वस्तुओं का शास्त्रीय रूप)

वक्ता और श्रोता के प्रत्यय (विश्वास) में सामानाधिकरण ला देना अर्थात उन्हें समान मनोविज्ञान स्तर पर स्थापित कर देना ही भाषा की व्यवस्था और उपयोगिता है।

1.2.6.2 वैयाकरणिक व्यवस्था –

भाषा ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य और अर्थ की समष्टि है। सार्थक ध्वनियों से शब्द बनते हैं और शब्दों के साथ जब कारकीय प्रत्यय जोड़ दिए जाते हैं तो वे पद बन जाते हैं जैसे– (राम,

रावण, बाण और मारना) ये सब शब्द हैं। जब हम राम में ने रावण में को बाण में से मारना में आ जोड़ लेते हैं तब ये सभी पद बन जाते हैं। और क्रम तथा अन्विति आदि व्यवस्था के कारण वाक्य बनाते हैं जिसका एक सम्पूर्ण अर्थ होता है। शब्द को अर्थतत्व (शब्द) तथा प्रत्यय को संबंध तत्व (कारकीय प्रत्यय) भी कहते हैं, इसी अर्थतत्व और संबंध तत्व को व्यवस्था भाषा की वैयाकरणिक व्यवस्था कही जाती है।

भाषा में मर्यादा अथवा व्यवस्था के कारण ही भाव सम्प्रेषणीयता आती है। हिन्दी भाषा में वाक्य में पहले योजना में पहले उद्देश्य और फिर विधेय आता है। इसी तरह सकर्मक क्रिया के पहले सामान्य भूतकाल बताने के लिए कर्ता के बाद ने का प्रयोग किया जाता है। जबकि अकर्मक क्रिया के पहले इसका प्रयोग नहीं होता

हिन्दी में वाक्य रचना करते समय पहले कर्त्ता फिर कर्म और फिर क्रिया आती है, जैसे–राम चित्र देखता है। यह हिन्दी को वाक्य व्यवस्था है। जबकि अंग्रेजी में कर्ता के बाद क्रिया आती है। जबकि कर्म सबसे अंत में आते हैं।

वाक्य बनाते समय पांच बातों का ध्यान रखना पड़ता है। चयन, क्रम, निकटस्थ अवयव, मैत्री और व्यवस्था।

भाषा की वैयाकरणिक व्यवस्था में वाक्य के अन्तर्गत आने वाले सभी अवयवो की वैयाकरणिक व्यवस्था स्थापित की जाती है ताकि अवयवों में आपस में संबंध बना रहे। और उनसे मनुष्य के एक पूरे विचार की अभिव्यक्ति हो सके।

1.2.6.3 सम्प्रेषणीयता की व्यवस्था :–

यह व्यवस्था भाषा के सामाजिक पक्ष से संबंध रखती है। इसमें व्यक्ति और समाज को ध्यान में रखकर भाषा को व्यवस्थित किया जाता है। भाषा इस स्थिति पर पहुंचकर सम्प्रेषण का सामान्य साधन बन जाती है और इसी व्यवस्था के कारण कोई भी भाषा व्यक्ति से उत्पन्न होकर समाज से आगे बढ़ती हुई सार्वभौम बन जाती है।

1.4 भाषा की संरचना और भाषिक प्रकार्य :–

भाषा की संरचना से तात्पर्य है कि वे तत्व जिनकी संयोजना से भाषा बनती है उनको किस प्रकार रचा जा रहा है। संरचना शब्द में सम् उपसर्ग पूर्वक रच धातु के ल्युट प्रत्यय लगने के बाद स्त्रीलिंग में आ प्रत्यय जोड़ दिया गया है, सरंचना का अर्थ है भाषा निर्माण संबंधित प्रतियत्न करना।

भाषा की सरंचना के लिए उसे दो भागों में बांटा जा सकता है। 1. अभिव्यक्ति 2. अर्थ

1. अभिव्यक्ति के तीन स्तर हैं–

1. वाक्य 2. रूपिम (रूपग्राम) 3. स्वनिम (ध्वनिग्राम)

वाक्य रचना :– वाक्य कई रूपिमों से बनता है और कई बार वह एक पद या एक अक्षर का भी होता है। लेकिन प्रत्येक वाक्य पूर्ण विचार को अभिव्यक्त करता है। व्याकरणिक दृष्टि से वाक्य में पहले उद्देश्य, बाद में विधेय जैसे– मैं (उद्देश्य) बाजार जाता है। इसके अतिरिक्त पद विन्यास संबंधी पांच बातें वाक्य रचना के अन्तर्गत आती है। चयन, क्रम, निकटस्थ अवयव, मैत्री और व्यवस्था।

1 चयन :– किसी एक अर्थ को बताने के लिए अनेक पर्यायवाची शब्द होते हैं लेकिन उनमें थोड़ा बहुत सूक्ष्म अंतर होता है। वक्ता अपने अभीष्ट अर्थ को बताने के लिए पर्यायवाची शब्द में से उपयुक्त शब्द को चुनता है। इसे चयन कहते हैं जैसे – गर्जना, तर्जना, ध्वनिकरना, निनाद करना आदि शब्द जोर से बोलने के पर्यायवाची है लेकिन जहां बादलों की गड़गड़ाहट के लिए प्रयोग करना हो, वहां गर्जना शब्द का प्रयोग किया जाएगा।

2. क्रम :– हिन्दी भाषा वाक्य रचना करते समय पहले कर्ता, फिर कर्म और फिर क्रियापद रखा जाता है जबकि अंग्रेजी के पहले कर्ता, फिर क्रिया और अंत में क्रम पद का प्रयोग होता है, संस्कृत ग्रीक और लैटिन भाषाओं में शब्द और विभक्ति मिले–जुले होते हैं। इसलिए उन्हें वाक्य में कहीं भी रखा जा सकता है।

3. निकटस्थ अवयव :– वाक्य में कौन सा पद (अवयव) किस पद के निकट है। इसका ज्ञान हमें अर्थ के आधार पर होता है। यही पद वाक्य के अवयव कहलाते हैं। जैसेः– चिड़िया का बच्चा उंचे पेड़ पर स्थिर घोंसले से धरती पर गिरा। इस वाक्य में गिरा और चिड़िया का बच्चा दोनों पद निकटस्थ अवयव है,यद्यपि इनका प्रयोग दूर–दूर हुआ है।

4. मैत्री :– मैत्री का तात्पर्य वाक्य में आये हुए उन पदों से हैं जिनके साथ एक विशेष प्रकार के पद आ जा सकते हैं, सभी नहीं। जैसे–श्रृंगार, रस में आने वाले पद परस्पर मैत्री रखते हैं। इसी तरह अन्य रसों के वाक्यों में भी पद मैत्री होती है।

5. व्यवस्था – वाक्य रचना की विशिष्ट पद्धति को व्यवस्था कहते हैं। जैसे : कुछ वाक्य कृर्तवाच्य,और कुछ वाक्य कर्मवाच्य और कुछ वाक्य भाववाच्य। इसके अतिरिक्त वाक्य के अनेक भेद होते हैं, जैसे – सरल वाक्य, संयुक्त वाक्य और मिश्रित वाक्य इत्यादि।

6. रूप या रूपिम :– जब हम सार्थक ध्वनियों को अर्थपूर्ण इकाई के रूप में प्रयोग करते हैं तो उन्हें रूप या रूपिम कहते हैं। जैसे – तुम्हारे नगर की सफाई होगी। इस वाक्य में तुम और साफ सफाई रूपिम के दो भेद होते हैं। शब्द और पद सार्थक ध्वनियों के समूह को शब्द कहते हैं। और यही शब्द जब कारकीय चिन्हों से युक्त हो जाते हैं तो पद कहे जाते हैं, वाक्य में पदों का प्रयोग किया जाता है, शब्दों का नहीं। इसी शब्द को भाषा वैज्ञानिक शब्दावली में अर्थतत्व भी कहा जाता है और कारकीय चिन्हों को संबंध तत्व कहा जाता है।

आचार्य पाणिनी ने शब्द के दो भेद किए हैं।

1. सुबन्त 2. तिड़न्त

1. सुबन्त – शब्दों के जो रूप बनते हैं उन्हें सुवन्त कहा जाता है अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि पद सुबन्त होते हैं,

2. क्रिया पदों को तिड़न्त कहा जाता है। जैसे– खाता है, जाता है, संस्कृत में पश्चति, गच्छति।

आचार्य यास्क ने शब्द के चार भेद किए हैं।

1. नाम 2. आख्यात 3. उपसर्ग 4. निपात।

1. नाम के अंतर्गत नाम के द्वारा संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि का बोध होता है।

2. आख्यात से क्रिया पद का बोध होता है

3. उपसर्ग :– वे शब्दांश है जो किसी संज्ञा, शब्द, के प्रारंभ आदि में जुड़कर उसके अर्थ में परिवर्तन कर देते हैं। जैसे– प्रहार, आहार, उपहार आदि।

हिन्दी में संस्कृत के जो उपसर्ग ज्यों के त्यों आ गये हैं उन्हें तत्सम उपसर्ग कहते हैं। ये संख्या में 21 है।

प्र, परा, उप, सम्, अनु इत्यादि।

कुछ उपसर्ग हिन्दी के अपने हैं जिन्हें हिन्दी को उपसर्ग कहा जाता है। जैसे – छुट–छुट, भैये, अध––––।

कुछ उपसर्ग तद्भव भी है। कुछ उपसर्ग विदेशज जैसे– उर्दू भाषा के उपसर्ग वे बेमतलब, बा मुराहदा, अंग्रेजी के उपसर्ग–मीडवाईज, सब इंस्पेक्टर।

4. निपात :– जो हमारी भाषा में न जाने कब से बने बनाये रूप में प्रयोग किये जा रहे हैं, उन्हें निपात कहते हैं इनमें प्रायः अवयव शब्दों की गणना की जाती है। जैसे–किंतु, तथा, और जैसा, तैसा इत्यादि।

कामताप्रसाद गुरू ने अपने हिन्दी के प्रथम व्याकरण ग्रंथ में अंग्रेजी व्याकरण के अनुसार शब्द के आठ भेद बताए हैं।

1. संज्ञा, 2. सर्वनाम, 3. विशेषण 4. क्रिया 5. क्रिया विशेषण 6. समुच्चयबोधक 7. संबंध बोधक, 8. विस्मयादि बोधक।

पहले चार विकारी कहे जाते हैं, बाकी के चार अविकारी होते हैं क्योंकि उनमें कोई बदलाव नहीं होता।

भाषा की संरचना में शब्द, पद, अथवा रूपिम आदि की विशिष्ट व्यवस्था की जाती है। यही भाषा की संरचना है।

स्वनिम् – ध्वनि को स्वनिम कहते हैं। यह किसी भाषा का प्रारंभिक रूप अथवा लघुतम इकाई है। भाषा की विभिन्न ध्वनियां वाग्यंत्र के विभिन्न अवयवों से पैदा होती है। इन ध्वनियों के विभिन्न भेद किये जाते हैं जैसे–हिन्दी की ध्वनियों में स्वर और व्यंजन, स्वर में मूल स्वर, मानक स्वर और संधि स्वर होता है, मूलस्वर– अ,इ,उ, ऋ। संधि स्वर– अ, अ= आ, ई, शब्द+अध्ययन = शब्दाअध्ययन।

मानक स्वर – वे हैं जो विभिन्न स्थितियों एवं विभिन्न उच्चारणों में एक जैसे उच्चारित होते हैं, आ, ई, विभिन्न उच्चारण स्थानों के आधार पर स्वरों और व्यंजनों के अनेक भेद है, जैसे–कण्ठय, तालव्य, मूर्धन्य, दन्तव्य, ओष्ठय इत्यादि। इसी तरह मात्रा की दृष्टि से स्वर के तीन भेद होते हैं, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत स्वर।

अ का अर्थ अनुस्वार, अ का अर्थ विसर्ग, अनुनासिक मुख और नाक से बोले जाने वाली बोली है, अनुस्वार– सिर्फ नासिका से बोली जाती है।

1. ह्रस्व स्वर –जिस ध्वनि के उच्चारण में एक मात्रा के बराबर समय लगे उसे ह्रस्व स्वर कहते हैं। अ, उ।

2. दीर्घ स्वर – जिस ध्वनि के उच्चारण में दोगुना समय लगे,

जैसे – आ, ई, उ।

3. प्लुत स्वर – जिस स्वर के उच्चारण में तीन मात्रा का समय लगे। जैसे– ओइम।

इन ध्वनियों का वर्गीकरण किया जाता है और वर्गीकरण को मुख्यतः तीन आधार है।

1. स्थान– 2. प्रयत्न 3. करण –करण जो मुख विवर्ण में अस्थिर उन इन्द्रियों को करण कहा जाता है जो निरन्तर गतिशील रहकर ध्वनियों के उच्चारण में सहयोग देती हैं।

1. स्थान उन इन्द्रियों के कारण बनता है जो स्थिर रहती है। इस दृष्टि से लेकिन विद्वानों ने केवल स्थान और प्रयत्न को ही ध्वनियों के वर्गीकरण का आधार है। करण को स्थान में समाहित कर लिया गया है, ये स्थान के आधार पर ये ध्वनियां कण्ठय, तालण्य, मूर्धन्य, ओष्ठ्य आदि वर्गों में बांटी जाती है।

2. प्रयत्न – ध्वनियों के उच्चारण में वक्ता को प्रयत्न करना पड़ता है। यह प्रयत्न बाहर और भीतर दोनों ओर किया जाता है, इसलिए प्रयत्न के दो भेद हैं।

1. आभ्यंतर 2. बाह्य।

1. आभ्यतंर –ओष्ठ से लेकर कण्ठ तक ध्वनि उच्चारण में जो परिवर्तन किया जाता है उसे आभ्यांतर प्रयत्न कहते हैं, और कण्ठ्य से नीचे ध्वनि उच्चारण में जो प्रयत्न किया जाएगा उसे बाह्य प्रयत्न कहते हैं।

आभ्यंतर पांच प्रकार के होते हैं।

1. स्पृष्ट 2. ईषत स्पृष्ट 3. विवृत 4. ईषद् विवृत 5. संवृत ।

बाहर प्रयत्न ग्यारह प्रकार के हैं

विवार, संवाद, श्वास, नाद, घोण, अघोण, अल्पप्राण, महाप्राण, उदांत, अनुदांत, स्वरित।

इसी तरह उच्चारण शक्ति के आधार पर ध्वनि के तीन भेद किए जाते हैं।

1. सशक्त 2. अशक्त 3. मध्यम

इस प्रकार ध्वनि भाषा का मूल आधार है। इसीलिए भाषाकी संरचना में प्रत्येक पक्ष का गंभीरता से अध्ययन किया जाता है। फिर उससे शब्दायान बनाए जाते हैं लेकिन भाषा स्वर और

व्यंजन ध्वनियों का समूह या संयोग नहीं बल्कि उसमें (भाषा) मात्रा, सुर, वलाघात आदि को आवश्यक तत्व है जिन्हें ध्वनि गुण कहा जाता है।

1.4.1 भाषा व्यवहार :– भाषा व्यवहार की तीन प्रधान स्थितियां होती है। 1. व्यक्ति स्वयं 2. व्यक्ति–व्यक्ति 3. व्यक्ति–समाज :– सामाजिक दृष्टि से भाषा के मुख्य चार व्यवहार का उपयोग है।

1. सूचन 2. प्रेरण :– प्रेरण की भाषा को गत्यात्मक उपयोग कह सकते हैं। इसमें राजनैतिक पार्टियों के चुनावी घोषणा पत्र, किसी चीज का प्रचार, विज्ञापन, नारे, नेताओं के भाषण आदि आते हैं।

3. रसन – इस दृष्टि से भाषा का व्यवहार रचनात्मकता या अस्वादनात्मक रूप में किया जाता है। ऐसी स्थिति में रमणीय भाषा का प्रयोग हमारी भावनाओं को उददीपत करने के लिए किया जाता है। जैसे–युद्ध के समय पर वीररस की रचनाएं, हमारी वीरता की भावना को जगाने के लिए होती है। लेकिन उसका प्रधान उद्देश्य सौन्दर्य बोध होता है इसी प्रकार श्रृंगार रस में भाषा का अपने तरह का सौन्दर्य बोध होता है।

4. चिन्तन – भाषा का सामाजिक उपयोग या व्यवहार चिंतन से भी संबंधित है, यह चिंतन दो प्रकार का होता है 1. समाज सापेक्ष 2. समाज निरपेक्ष – जहां पर हम अपनी व्यक्तिगत समस्या सुलझाने के लिए या अपने अतीत पर विचार करने के लिए अथवा अपने सुनहले भविष्य का ताना–बाना बुनने के लिए चिंतन करते हैं तो इसे समाज निरपेक्ष चिंतन कहा जाता है क्योंकि–इसका संबंध स्वयं अपने आप से होता है।

2. समाज सापेक्ष :– जब समाज के मनीषी लोग धर्म, दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विषयों पर सैद्धांतिक और व्यवहारिक चिंतन करते हैं तो उनके सामने कोई व्यक्ति या कोई वर्ग नहीं होता, बल्कि पूरा समाज होता है। इसलिए इसको समाज सापेक्ष चिंतन कहते हैं, इस प्रकार भाषा व्यवहार की तीन स्थितियां होती हैं, व्यक्ति की अपने आप से, व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति से और व्यक्ति की समाज से। वास्तव में यदि भाषा न होती तो जीवन और जगत का व्यवहार न

चलता और मनुष्य में संसार में दृष्टा बना रहता और मानव सभ्यता के विभिन्न सोपान न बन पाते। इसलिए राजशेखर ने अपने ग्रंथ काव्य मीमांसा (स्पष्टीकरण) में कहा है–

ठदमनधंतमः कृतस्नम्, जायेत भुवनत्रयम्।

यदि शब्दाह्वयम् जयोति :, असंसारम् न दीपयेत्।।

अर्थात् –यदि शब्द की ज्योत संसार को प्रकाशित न करती तो तीनों भवनों में घोर अंधकार ही छाया रहता।

1.5 भाषा विज्ञान :–

भाषा विज्ञान का सीधा सा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा का विज्ञान कहा जाता है। अब तक हम भाषा का सामान्य ज्ञान अर्जित करते आये हैं लेकिन भाषा विज्ञान हमें भाषा के विशिष्ट पक्षों का ज्ञान कराता है, और भाषा विज्ञान की दृष्टि भाषा के संबंध सामान्य दृष्टि से अलग होती है।

आजकल ज्ञान को प्रायः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है।

1. भौतिक विज्ञान,   2.समाज–विज्ञान   3. मानविकी।

1. भौतिक विज्ञान का संबंध उन वस्तुओं से हैं जो मनुष्य के द्वारा नहीं बनाई गई है।

2 समाज– विज्ञान के अंतर्गत मनुष्य के सामाजिक आचार–व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

3. मानविकी में मनुष्य के व्यक्तिगत और सर्जनात्मक ज्ञान का अध्ययन किया जाता है।

भाषा विज्ञान इन तीनों प्रकार के ज्ञानों से संबंध रखता है। ध्वनि सम्प्रेषण की दृष्टि से भाषा विज्ञान का संबंध भौतिक विज्ञान से हो जाता है जिसमें वाग्यंत्र, श्रवणयंत्र आदि भौतिक विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। भाषा की सामाजिक उपयोगिता है, इसीलिए इसका

संबंध समाज विज्ञान से है। व्यक्तिगत और सर्जनात्मक साहित्य के रूप में भाषा विज्ञान भाषा को मानविकी विज्ञान के समीप ले जाता है।

भाषा विज्ञान उस अर्थ में विज्ञान नहीं है जिस अर्थ में गणित या भौतिक शास्त्र। फिर भी वह विज्ञान क्योंकि उसमें भी नियम है और ये नियम कार्य और कारण भाव पर आधारित है। भाषा विज्ञान के नियमों में अपवाद भी पाये जाते हैं। इसलिए इसे शुद्ध विज्ञान नहीं कहा जा सकता। फिर भी भाषा विज्ञान के नियमों का प्रयोग व्यापक स्तर पर किया जाता है। इस दृष्टि से भाषा विज्ञान का संबंध मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान, मानविकी, समाजशास्त्र इतिहास, भूगोल और व्याकरण आदि से है। व्याकरण से तो इसका विशिष्ट संबंध है। लेकिन दोनों में कुछ समानताएं और विषमताएं हैं। इसी प्रकार भाषा एक मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन है। दूसरे शास्त्र या अन्य विज्ञानों के लिए भाषा माध्यम का कार्य करती है, अर्थात् दूसरों के लिए वह साधन है,लेकिन भाषा विज्ञान के लिए वह साधन भी है और साध्य भी।

भाषा विज्ञान की परिभाषा :–

1. भारतीय विद्वानों में ***डॉ. श्यामसुन्दर*** के अनुसार————————

''भाषा विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें भाषामात्र के भिन्न–भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाता है।''

2. डॉ. मंगलदेवशास्त्री– भाषा विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं जिसके सामान्य रूप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

3. डॉ. बाबूराम सक्सेना – भाषा विज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन करना है।''

4. डॉ भोलानाथ तिवारी – ''जिस विज्ञान के अन्तर्गत ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे सामान्य भाषा की उत्पत्ति, गठन, प्रकृति और विकास आदि की सम्यक व्याख्या करते हुए इन सभी के विषय में सिद्धांतों का निर्धारण हो उसे भाषा विज्ञान कहते हैं।''

5. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना – ''भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा एवं भाषा तत्वों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

6. प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा –भाषा विज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान, इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा विज्ञान कहलाता है।''

पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएं –

अंग्रेजी में भाषा विज्ञान के लिए दो शब्द मुख्य रूप से प्रचलित हैं 1. फिलोलोजी 2. लिंगिवस्टिक्स।

1. ब्लूम फिल्ड के अनुसार – जिसमें लिखित भाषा का अध्ययन किया जाता है उसे फिलोलोजी कहते हैं और जिसमें बोलचाल की भाषा का अध्ययन किया जाता है उसे लिंग्विस्टिक्स कहते हैं।

2. ग्लीसन का कथन है कि लिंग्विस्टिक्स में भाषाओं का अध्ययन उनकी आंतरिक संगठन की दृष्टि से किया जाता है।

3. प्रो. मैक्समूलर – भाषा विज्ञान फिलोलोजी है जिसमें भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

ब्रिटेन के विश्वकोष में भी लिखा है कि फिलोलोजी का शब्द अर्थ भाषा का विज्ञान अर्थात भाषाओं की रचना और विकास का अध्ययन।

इन सभी परिभाषाओं का सम्यक अनुशीलन करने पर व विवेचन करने पर हम भाषा विज्ञान को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं –––भाषा विज्ञान वह विज्ञान अथवा शास्त्र है

जिसमें भाषा एवं उसके विभिन्न तत्वों का वैज्ञानिक आधार पर सांगोपांग अध्ययन किया जाता है।

भाषा विज्ञान की व्याप्ति – मनुष्य के द्वारा अर्जित किया ज्ञान दो रूपों में उपलब्ध है विज्ञान और कला। विज्ञान का ज्ञान र्निविकल्प होता है जैसे– दो और दो चार। लेकिन कला में विकल्प के लिए अवकाश होता है। क्योंकि कला मनुष्य के भावजगत से संबंध रखती है। और उसमें व्यक्तिगत रूचियों के आधार पर विचित्रता होती है। विज्ञान हमारी ज्ञान की प्यास को शांत करता है और कला अर्न्त सौन्दर्य को शांत करती है, भाषा विज्ञान व्यक्ति और समाज से संबंध रखता है तथा अनेक रूपों में वह समाज के व्यवहार का माध्यम बनने वाली भाषा का अध्ययन प्रस्तुत करती हैं। ध्वनि, विज्ञान, पद, विज्ञान, वाक्य, विज्ञान, अर्थविज्ञान तथा कोष विज्ञान और भाषिक भूगोल के माध्यम से भाषा विज्ञान का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। यही नहीं इसके अतिरिक्त भाषा विज्ञान वर्णनात्मक ऐतिहासिक और तुलनात्मक इन तीन शाखाओं के अंतर्गत विश्व को किसी भी भाषा का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

भाषा विज्ञान का अन्य शास्त्रों एवं विज्ञानों से भी संबंध है। सबसे बड़ा संबंध तो भाषा विज्ञान का व्याकरण से है। व्याकरण शब्दों की साधिकार और असाधिका पर विचार करता है। उसके नियम अत्यंत व्यवस्थित है। इसीलिए कभी–कभी व्याकरण के कठोर अनुशासन में बंधकर संस्कृत भाषा केवल विद्वानों की भाषा बन गई। आमजन से इसका सम्पर्क टूट गया। भाषा सम्पदा की वृद्धि की दृष्टि से भी कभी–कभी व्याकरण बाधक बनता है लेकिन भाषा विज्ञान शब्द सम्पद की बढ़ोतरी में साधक बनता है। जैसे–कृष्ण का किशन बन जाना, विष्णु का विशन बन जाना व्याकरण को अखरता है। व्याकरण इसे विकृति मानता है, किन्तु भाषा विज्ञान इसे विकास कहता है। इसलिए आचार्य यास्क ने भाषा विज्ञान को अपने निरूक्त शास्त्र में व्याकरणशास्त्र कार्त्स्न्यम्।''

1.5.1 भाषा विज्ञान की व्याप्ति –

भाषा विज्ञान मानव विज्ञान से संबंध रखकर मानव समाज के विकास के साथ–साथ भाषा के विकास का भी अध्ययन प्रस्तुत करता है। भौतिक विज्ञान के साथ संबंध रखकर ध्वनियों का

वैज्ञानिक अध्ययन करता है। और ध्वनियों का यांत्रिक अध्ययन भी प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार भाषा विज्ञान का इतिहास भूगोल, मनोविज्ञा, तर्कशास्त्र और समाजशास्त्र आदि से भी संबंध है। तर्कशास्त्र के माध्यम से हम अर्थद्योतन की प्रक्रिया पर विचार करते हैं, आचार्य यास्क ने अपने निरूक्त शास्त्रों में शब्दों के र्निवचन का आधार तर्क को ही बनाया है। इस प्रकार भाषा विज्ञान अत्यंत व्यापक है, वह हमारे जीवन में न केवल हमें भाषा एवं भाषा तत्वों का ज्ञान देता है बल्कि भाषा को जीवन से जोड़कर हमें एक व्यापक दृष्टि प्रदान करता है।

1.6 भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं :—

भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की विभिन्न पद्धतियों को ही भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं कहा जाता है। भाषा का अध्ययन उसके विभिन्न तत्वों और उन तत्वों पर विभिन्न प्रभाव डालने वाली विभिन्न पद्धतियों के अध्ययन से होता है। साधारण रूप से भाषा विज्ञान के अध्ययन की तीन मुख्य दिशाएं हैं——

1. वर्णात्मक 2. ऐतिहासिक 3.तुलनात्मक।

कुछ विद्वान प्रयोगात्मक दिशा के रूप में अध्ययन की चौथी दिशा मानते हैं। लेकिन वास्तव में केवल तीन ही दिशाएं ऐसी है जिन के माध्यम से हम भाषा विज्ञान का अध्ययन करते हैं।

1.6.1 वर्णात्मक भाषा विज्ञान — भाषा विज्ञान की इस शाखा में किसी भाषा के काल—विशेष के स्वरूप का अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है और नियमों का निर्धारण किया जाता है। दूसरे शब्दों में वर्णनात्मक भाषा विज्ञान को व्याकरण भी कहा जाता है। इस शाखा के अंतर्गत भाषा के तत्वों का सांगोपांग अध्ययन किया जाता है। लेकिन जिस भाषा का अध्ययन किया जाता है वो किसी काल—विशेष से संबंधित होती है। हम उस भाषा के ध्वनि, पद, वाक्य किसी का भी अध्ययन करे। लेकिन ये सारे अंग किसी एक समय या काल के होंगे। इस शाखा के अंतर्गत न तो भाषा का विकास दिखाना होता है, न किसी अन्य भाषा से उसकी तुलना की जाती है। इसलिए पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक द सोसूर ने वर्णनात्मक भाषा विज्ञान को स्थित्यात्मक

कहा है। इसका सबसे श्रेष्ठ उदाहरण महर्षि पाणिनी के लिए अष्टाध्यायी है और 14 सूत्रों में व्याकरण को बांध दिया है।

आधुनिक युग में किसी भी भाषा के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में वर्णनात्मक प्रणाली बहुत प्रमुख हो गई है। इसके सहारे भाषा विज्ञान के अध्ययन में किसी दूसरे शास्त्र की सहायता नहीं लेनी पड़ती, यहां तक कि अर्थ कुछ विद्वानों ने अर्थ–विज्ञान को भी इस प्रणाली के अर्न्तगत अध्ययन की सीमा से बाहर कर दिया है, इस प्रणाली में भाषा के उच्चरित रूप का अध्ययन होता है, लेकिन यह दृष्टि एकांगी है क्योंकि अर्थहीन अथवा अर्थ–निरपेक्ष उच्चरित भाषा क अध्ययन हास्यापद है। क्योंकि ऐसी स्थिति में मनुष्य और पशु की भाषा में क्या अंतर रहेगा। यदि अर्थ को छोड़ दिया जाए तो भाषा का व्यक्तिगत और सामाजिक आदि का प्रयोजन क्या रह जायेगा।

भाषा के दो पक्ष है ध्वनन और श्रवण। ध्वनन भाषा का आधा भाग है। उसकी पूर्णता के लिए श्रवण आवश्यक है।इसलिए वर्णनात्मक अध्ययन में अर्थ विज्ञान का भी उतना ही महत्व है जितना ध्वनि विज्ञान की जिन भाषा वैज्ञानिकों ने वर्णनात्मक भाषा विज्ञान के अर्न्तगत भाषा के अर्थ विज्ञान की उपेक्षा की है उनका दृष्टिकोण अधूरा है।

1.6.2 ऐतिहासिक भाषा–विज्ञान :–

इस भाषा के या इसके अर्न्तगत किसी भाषा के विभिन्न काल के स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। जैसे – हम हिन्दी के विकास का अध्ययन इसी प्रणाली के अर्न्तगत करते हैं। इसलिए इस पद्धति को गत्यात्मक अथवा विकासात्मक प्रणाली भी कहा जाता है। उदाहरण के लिए– प्राचीन और आधुनिक आर्य भाषाओं का अध्ययन जब हम करते हैं तो वैदिक युग की संस्कृत से लेकर प्राकृत, अपभ्रंश से होते हुए आधुनिक युग तक आते हैं। और यह देखते हैं कि आधनिक भाषाओं की ध्वनि, पद या अर्थ की दृष्टि से किस प्रकार विकास हुआ है? विकास के कारण और परिणाम क्या थे? इसके साथ ही भाषा के विकास के अनेक सोपान भी दिखाये जाते हैं, तात्पर्य यह है कि ऐतिहासिक भाषा–विज्ञान के अर्न्तगत यदि हम हिन्दी का संदर्भ ले तो हम हिन्दी के शब्दों का प्राचीनतम संस्कृत रूप देखेंगे और उसके बाद पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में

आकर वह शब्द रूप कैसे परिवर्तित हो गया, इन सब का अध्ययन किया जाता है, जैसे– अक्षि से आंख, हस्त से हाथ।

1.6.3 तुलनात्मक भाषा–विज्ञान :–

इस प्रणाली में वर्णनात्मक और ऐतिहासिक दोनों प्रणालियों का अर्न्तभाव हो जाता है, वर्णनात्मक के अंतर्गत किसी एक भाषा के काल–विशेष के स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक के अंतर्गत किसी एक भाषा के विभिन्न कालों के स्वरूप का का अध्ययन किया जाता है अर्थात् दोनों प्रणालियों में किसी एक भाषा को अध्ययन का आधार बनाया जाता है। लेकिन तुलनात्मक अध्ययन में अनेक भाषाओं को अध्ययन का आधार बनाना पड़ता है, इसमें दो या दो से अधिक भाषाओं के काल–विशेष के स्वरूपों को लिया जाता है। वास्तव में भाषा विज्ञान का जन्म भी तुलनात्मक प्रणाली में हुआ है, तुलनात्मक भाषा विज्ञान में दो या दो से अधिक भाषाओं के तत्वों––––ध्वनि,पद, वाक्य अर्थ–––को लेकर हो सकती है।

अंग्रेजी भाषा में जिसे हम लिंगविस्टिक्स कहते हैं, उसका संबंध भाषा के उच्चरित या वाचिक रूप है और उसमें भाषा को साध्य मानकर अध्ययन किया जाता है। फिलोलोजी शब्द अपने आप में व्यापक है। उसका साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक महत्व है। जैसे– वैदिक युग में कितनी ध्वनियां थी इसका ज्ञान हमें लिंग्विस्टिक्स करायेगा। लेकिन अशोक के अभिलेखों की लिपि या भाषा का अध्ययन भाषा की ऐतिहासिकता और उसके अध्ययन आदि में जो सहायता मिलती है वो सब फिलोलोजी के द्वारा हो सकता है। इसमें भाषाओं के लिखित रूप का अध्ययन किया जाता है।

1.3 सारांश :–

भाषा हमेशा सार्थक होती है। उसके प्रत्येक शब्द का कोई न कोई अर्थ होता है। कई शब्द तो कई–कई अर्थ रखते हैं। अर्थ ही शब्द की शक्ति और महिमा है। शब्द शरीर है और अर्थ उसकी आत्मा।शब्द और अर्थ पर विचार करते समय शब्द शक्तियों पर विचार किया जाता है।

अंत में कहा जा सकता है कि मनुष्य ज्यों–ज्यों सभ्य होता गया त्यों–त्यों अपने जीवन व्यवहार को चलाने के लिए, अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए उसने भाषा का आविष्कार किया और यह आविष्कार स्थानीय और सामयिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया गया। इस प्रकार भाषा की संरचना में ध्वनि, शब्द, रूप, पद, वाक्य और अर्थ का समन्वय होता है, और मानसिक तथा भौतिक आधारों पर इसका प्रयोग किया जाता है।

1.4 संकेत शब्द :–

भाषाविज्ञान, अभिलक्षण, ध्वनि, यादृच्छिक, वागयंत्र, मानविकी,

1.5 स्वः मूल्यांकन हेतु प्रश्न :–

प्रश्न 1– भाषा की परिभाषा देते हुए परभिाषा की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 2– भाषा अभिव्यक्ति का साधन है– इस कथन से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न 3– भाषा का अर्थ बताते हुए भाषा की विशेषताओं का वर्णन करे।

प्रश्न 4– हिंदी की कितनी उपभाषाएं है? विस्तार से वर्णन करे।

प्रश्न 5– निम्न पर टिप्पणी करे।

क– ध्वनि प्रतीक

ख– यादृच्छिकता

1.6 संदर्भ सामग्री :–

1. भाषा और भषिकी, देवीशंकर द्विवेदी, राधाकृष्ण, दिल्ली, 1993
2. भाषा विज्ञान की भूमिका, देवेन्द्रनाथ शर्मा, राधाकृष्ण, 1989
3. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, किताब महल इलाहाबाद, 1997
4. मानक हिन्दी का संरचनात्मक भाषा विज्ञान, ओमप्रकाश भारद्वाज, आर्यबुक डिपो, दिल्ली

5. भाषाविज्ञान और मानक हिन्दी, नरेश मिश्र, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1993
6. आधुनिक भाषाविज्ञान, कृपाशंकर सिंह एवं चतुर्भुज सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1997
7. आधुनिक भाषाविज्ञान, राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1996
8. भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र, कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1997
9. हिन्दी भाषा : उद्गम और विकास, उदयनारायण तिवारी, भारती भंडार, इलाहाबाद, 1961
10. हिन्दी भाषा : भोलानाथ तिवारी, किताब महल, दिल्ली, 1991
11. हिन्दी : उद्भव और विकास, हरदेव बाहरी, किताब महल, इलाहाबाद, 1965
12. हिन्दी भाषा का विकास, देवेन्द्रनाथ शर्मा एवं रामदेव त्रिपाठी, राधाकृष्ण, दिल्ली, 1971
13. हिन्दी भाषा : रूप विचार, सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण', चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1962
14. देवनावरी देवीशंकर द्विवेदी, प्रशांत प्रकाशन, कुरुक्षेत्र 1990
15. देवनागरी लेखन तथा हिन्दी वर्तनी, लक्ष्मीनारायण शर्मा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 1976
16. भाषाविज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा, द्वारिका प्रसाद सक्सेना, मीनाक्षी प्रकाशन दिल्ली, 1976
17. भाषा शिक्षण, रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, सहकारी प्रकाशन, दिल्ली, 1981
18. भाषा और भाषाविज्ञान, नरेश मिश्र, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2001
19. आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धान्त, रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998
20. अनुवाद विज्ञान, राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002
21. अनुवाद विज्ञान और सम्प्रेषण, हरिमोहन, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1984
22. अनुवाद विज्ञान और आलोचना की नयी भूमिका, रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 1980

हिंदी विज्ञान और हिंदी भाषा	
एम. ए. हिंदी	कोर्स कोड़ : एम. ए. – 101
समग्री संकलन एवं लेखन – डॉ. राजपाल सहायक प्रो0 हिंदी	विश्लेषक –
खंड–ख	अध्याय – 2

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विषय प्रस्तुति

2.3 सारांश

2.4 संकेत शब्द

2.5 स्वः मूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.6 संदर्भ सामग्री

2.0 उद्देश्य :–

आप गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय विज्ञान और प्रौद्योगिकी हिसार के दूरस्थ शिखा निदेशलय द्वारा संचालित पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष के प्रथम प्रश्न पत्र भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा की संरचना से संबंधित पाठ्यक्रम की इकाइयों का अध्ययन करने जा रहे है। प्रथम खंड ख में स्वन विज्ञान स्वरूप और शाखाएं का अध्ययन किया जाएंगा।

- ध्वनि विज्ञान की परिभाषा से परिचित हो सकेंगे।
- ध्वनि विज्ञान के अध्ययन की शाखाएं – (रूपविज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान) आदि विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी की स्वर ध्वनियो तथा व्यंजन ध्वनियों के वर्गीकरण तथा उसके आधारो को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई मे ध्वनि स्तर पर हिंदी की संरचना के विश्लेषण की जानकारी दी गई है। इस व्यवस्था की संरचना में विभिन्न इकाइयो, ध्वनि, शब्द, वाक्य आदिका योग रहता है। भाषा की संरचना में योग देनेवाली इन देनेवाली इन सभी इकाइयों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने वाला विषय भाषा विज्ञान कहलाता है। भाषा की संरचना का अध्ययन भाषा के विभिन्न इकायों के स्तर पर किया जाता है।भाषा की संरचना के संदर्भ में भाषा की सबसे बड़ी इकाई (अवयव) वाक्य है। तो सब से छोटी इकाई–ध्वनि है। संरचना के स्तर पर भाषा का अध्ययन इन सभी स्तरों पर अलग–अलग किया जाता है। इस इकाई में आप हिंदी भाषा के ध्वनिवैज्ञानिक स्तर की जो संरचना है उसका अध्ययन करेंगे।

2.2 विषय प्रस्तुति :–

2.2.1 स्वन विज्ञान का स्वरूप :–

भाषा विज्ञान भाषा का अध्ययन साध्य और साधन दोनों रूपों में करता है। उसकी अनेक शाखाएं हैं

जो इस प्रकार है– 1.ध्वनि विज्ञान 2. रूप विज्ञान 3. वाक्य विज्ञान 4. अर्थ विज्ञान

जब हम भाषा का अध्ययन करते हैं तो उसके प्रत्येक तत्व का अध्ययन किया जाता है जिसमें ध्वनि से लेकर भाषा के अर्थ पक्ष तक विचार किया जाता है। वास्तव में हमारे देश में सबसे पहले आचार्य यास्क ने भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसके बाद आचार्य पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में संस्कृत भाषा का अनुशासनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने पाणिनीय शिक्षा नामक अपने ग्रंथ में ध्वनि की शिक्षा पर विशेष बल दिया है।

भाषा के जिस अंग या तत्व का अध्ययन जिस भाग में किया जाता है वे ही भाग भाषा–विज्ञान के अंग कहलाते हैं। विभिन्न विद्वानों ने इन शाखाओं के बारे में मतभेद किया है, जैसे–श्यामसुन्दरदास ने इसकी छः शाखाएं मानी हैं – 1. ध्वनि विचार 2. ध्वनि शिक्षा 3. रूप विचार 4.वाक्य विचार 5 अर्थ विचार 6. प्राचीन शोध

प्रो. देवेन्द्र नाथ शर्मा ने भी भाषा विज्ञान के छः अंग माने हैं........ध्वनि, पद, अर्थ, वाक्य, कोश और भाषिक भूगोल। इनके अतिरिक्त वर्णनात्मक ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषा विज्ञान की तीन शाखाएं और बतायी है। डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. बाबूराम सक्सेना, डॉ द्वारिका प्रसा सक्सेना आदि विद्वानों ने केवल चार शाखाओं को महत्व दिया है। ध्वनि, रूप, वाक्य और अर्थ।

1. ध्वनि विज्ञान :– आजकल हमें स्वन विज्ञान या ध्वनि विज्ञान कहा जाता है। कुछ विद्वानों ने इसे स्वानिकी या ध्वनिकी नाम भी दिया है। इस शाखा के अन्तर्गत हमारे वाक्अंगों और उससे उत्पन्न होने वाली ध्वनियों का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाता है। जैसे–स्वर ध्वनि का पहला वर्ण कण्ठ से बोला जाता है उसी प्रकार व्यंजन ध्वनि का पहला वर्ण कण्ठ से बोला जाता है, स्वर ध्वनि जब व्यंजन में मिलती है तो उसका रूप मात्रिक हो जाता है। इसके अतिरिक्त भाषा की लघुतम इकाई व्याकरण की दृष्टि से ध्वनि किन्तु भाषा विज्ञान की दृष्टि से

वाक्य है। उस वाक्य में शब्द या पद होते हैं। और उस शब्द और पद की लघुतम इकाई है ध्वनि। इन्हीं ध्वनियों के संयोग से क्रमशः शब्द, पद और वाक्य बनते हैं। यही सार्थक संयोग भाषा है।

ध्वनि विज्ञान में ध्वनि से संबंधित तीन कार्यों का अध्ययन किया जाता है।

1. ध्वनि का उत्पादन – इसका संबंध वक्ता से है।

2. ध्वनि का संवहन – इसका संबंध ध्वनि के भौतिक अध्ययन से हे। हम जो कुछ बोलते हैं वह वायु की तरंगों द्वारा श्रोता के कानों तक ले जाया जाता है। इसका भी भौतिक अध्ययन किया जाता है।

3. ध्वनि का ग्रहण :– इसका संबंध श्रोता से है। ध्वनि की भौतिक शाखा में उपकरणों द्वारा कान बनाया जाता है। और उसके अंदर ध्वनि के ग्रहण का प्रकार और प्रवाह का अध्ययन किया जाता है।

इसीलिए आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों ने ध्वनि विज्ञान के तीन उपभेद किए हैं।

1. उत्पादनमूलक ध्वनि विज्ञान या औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान। 2. भौतिक ध्वनि विज्ञान 3. श्रौतिक ध्वनि विज्ञान।

1. उत्पादनमूलक अथवा औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान :– इस उपशाखा में ध्वनियों अथवा स्वनों की उच्चारण प्रक्रिया उच्चारण स्थान और प्रयत्न आदि का अध्ययन किया जाता है। और इस अध्ययन में वाग्यंत्र को अध्ययन बनाया जाता है।

2. भौतिक ध्वनि विज्ञान :– इस भौतिक शाखा में ध्वनियों के उच्चारण स्थान और उससे उच्चरित ध्वनियों के यथार्थ स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। इसमें देखा जाता है कि ध्वनि तरंगों का ठहराव याय प्रसारण कैसा होता है। इस शाखा को वास्तव में प्रयोगात्मक भाषा विज्ञानके अन्तर्गत रखा गया है। जहां ध्वनि यंत्रों के द्वारा प्रयोगात्मक ध्वनि विज्ञान का अध्ययन किया जाता है।

3. श्रौतिक ध्वनि विज्ञान :– इस शाखा में वक्ता द्वारा बोली गई ध्वनि का श्रोता द्वारा उच्चरित ध्वनि का ग्रहण करने से पूर्व वायु द्वारा ध्वनियों को संवहन का अध्ययन किया जाता है कि इन ध्वनि लहरों को श्रोता के कान कैसे ग्रहण करते हैं।

4. ऐतिहासिक ध्वनि विज्ञान :–

5. प्रायोगिक ध्वनि विज्ञान – कुछ यंत्र तो बड़े जटिल हैं जैसे– ऑसिलोग्राफ, स्पेक्टोग्राफ जबकि कुछ यंत्र बड़े सरल व आकार में छोटे हैं जैसे–कृत्रिम तालु, लैरिंगों स्कोप।

2.2.2 वाग्वयव और उसके कार्य :–

भाषा का आरंभ ध्वनि से होता है। ध्वनि शब्द संस्कृत की ध्वन् धातु के साथ कृडन्त प्रत्यय जोड़ने पर बनता है। इसका अर्थ है आवाज या आवाज करना। मनुष्य जब गोचर संसार में कुछ चीजें देखता या सुनता है। सबसे पहले उसकी आत्मा सम् प्रत्यय पैदा होता है, बुद्धि उस वस्तु या पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करती है। और मन को उस वस्तु के विषय में कुछ कहने के लिए प्रेरित करती हैं तब मन हमारे शरीर पर दबाव डालते हैं और वह दबाव प्राणवायु पर पड़ता है। हमारी नाभि से श्वास वायु मुख विवर से बाहर निकलती है तब वाग्यंत्र के विभिन्न स्थानों को छूती हुई श्वास वायु आवाज प्रकट करती है। उसी को ध्वनि कहते हैं।

ध्वनि के तीन पक्ष है। 1. उत्पादन 2. संवहन 3. ग्रहण। इनमें उत्पादन और ग्रहण का संबंध शरीर से है। और संवहन का संबंध वायु तरंगों से वक्ता के मुंह से निकली हुई ध्वनि श्रोता के कानों तक पहुंचती है और तब अर्थबोध करके श्रोता उसे व्यवहार में परिणति कर देती है।

किसी ध्वनि उत्पादन के प्रसंग में भाषा विज्ञान में वाग्यंत्र शब्द का प्रयोग होता है। इसके लिए वागिन्द्रिय शब्द का प्रयोग होता है। लेकिन वास्तव में हमारे शरीर में वागिन्द्रिय नाम की

कोई चीज नहीं है, और यदि है भी तो केवल कान, क्योंकि कान का उपयोग ध्वनियों के ग्रहण में अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ध्वनियों की उत्पति की जो अंग और इन्द्रियां काम में आती है उनका प्रधान उपयोग जीवन धारण के लिए होता है। जैसे– मुंह खाने के लिए, नाक सांस लेने के लिए आगे के दांत भोज्य पदार्थों को काटने के लिए तथा अगल–बगल के दांत उसे चबाने के लिए काम में लाये जाते हैं। इसलिए भाषा विज्ञान में वागिन्द्रिय शब्द को गौण अर्थ में प्रयुक्त मानना चाहिए। वास्तव में भाषा विज्ञान में जिस वागिन्द्रिय या वाग्यंत्र की बात की जाती है, ऐसा कोई अंग या अवयव हमारे शरीर में नहीं है जिससे केवल ध्वनि उत्पादन का कार्य होता है। लेकिन नाभि से लेकर और मुख विवर तक जो अंग है वे अपना मुख्य कार्य करते हैं। साथ ही ध्वनियों का उत्पादन भी करते हैं। वागिन्द्रिय की स्थिति और उसके कार्य को अच्छी तरह समझाने के लिए पहले हमें अपनी शारीरिक रचना और क्रिया का सामान्य ज्ञान कर लेना चाहिए। इस दृष्टि से मानव शरीर को निम्नलिखित तत्वों में बांटा गया है।

1. अस्थि तंत्र 2. पेशी तंत्र – इस तंत्र से अंगों के मोड़ने और फैलाने का काम लिया जाता है।

3. श्वसन तंत्र– सांस लेने और छोड़ने का जीवन धारण संबंधी कार्य किया जाता है।

4. पाचन तंत्र– भोजन के पचने और शरीर का पुष्ट करने का कार्य किया जाता है।

5. परिसंचरण तंत्र –इससे रक्त संचरण होता है।

6 उत्सर्जन तंत्र – 7. तंत्रिका तंत्र :– हमारी संवेदना, चेतना और ज्ञान का जिम्मेदार तंत्र है।

8. अंतःस्त्रावी तंत्र :– हमारे शरीर के अंदर रासायनिक तत्वों की व्यवस्था करना इसका काम है।

9. जनन तंत्र :– इसका संबंध सृष्टि रचने से है।

इन सभी तंत्रों के कार्यों का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करने पर हमें दो तंत्र ऐसे दिखाई देते हैं जिनका संबंध हमारी ध्वनि उत्पादन से ही है। वास्तव में ये दोनों तंत्र शरीर के बाहर और

भीतर के दो किनारों पर स्थित है। और दोनों मिलकर ध्वनि उत्पादन में सहायता करते हैं, वे दोनों तंत्र हैं :– श्वसन तंत्र और पाचन तंत्र।

श्वसन तंत्र के निम्नलिखित अवयव ध्वनि उत्पन्न करने के काम आते हैं।

1. नासिका विवर 2.स्वर यंत्र 3. फेफड़े।

पाचन तंत्र के दो अंग ऐसे हैं जिससे हम भाषण या वाणी का काम करते हैं 1. मुख विवर 2. ग्रसनि का गलबिल

इस प्रकार दोनों तंत्रों के कुछ अवयव ध्वनि की उत्पति में सहायक होते हैं। और इन्हीं के समन्वित रूप को वागिन्द्रिय (वागावयव) अथवा वाग्यंत्र कहते हैं,

वाग्यंत्र के कार्य :–

1.फेफड़े – फेफड़े प्रश्वास और विश्वास की क्रिया होती है। और जब फेफड़े से वायु बाहर निकलती है तो स्वर तंत्रियों से होकर निकलती है। और ध्वनि पैदा करती है। फेफड़े के उपर श्वास नली है जो दोनों फेफड़ों से संबंध रखती है।

2. स्वर यंत्र – श्वास नली के उपरी हिस्से में स्वर यंत्र नाम का एक यंत्र है। जब फेफड़े से प्राणवायु उपर की ओर चलनी है तो स्वरयंत्र से होकर के ही बाहर आती है। इस यंत्र के बीच में होठ के आकार की दो झिल्लीयां हैं, जिन्हें स्वरयंत्री कहते हैं। स्वर–तंत्रियों के बीच के छिद्रों के कण्ठ द्वार या काकल कहते हैं।

सामान्य अवस्था में ये स्वर–तंत्रियां अलग–अलग और कुछ खुली सी रहती है, और जब हमारा विश्वास इनके बीच से निकलता है तो इस अवस्था में अघोष ध्वनियों का उच्चारण होता है।

इसकी दूसरी अवस्था वह है जब ये सटी रहती है और विश्वास वायु धक्का देकर बाहर निकलती है तथा स्वर–तंत्रियों मे कम्पन होता है, ऐसी अवस्था में उच्चरित ध्वनियों का नाम घोष या नाद है।

तीसरी अवस्था में ये स्वर–तंत्रियां न तो पूर्ण रूप से सटी रहती है और न ही पूर्ण रूप से अलग–अलग। ऐसी स्थिति में जो ध्वनि उच्चरित होती है उसे जपित अथवा उपांशु ध्वनि कहते हैं।

3. ग्रसनिका या गलबिल :– इसकी स्थिति कण्ठ छिद्र के उपर और मुख के नीचे। स्वरों के उच्चारण में विशेष रूप से उसके सुर में इस ग्रसनिका की सहायता ली जाती है। जब हम ओइम शब्द का उच्चारण करते हैं तो वह ध्वनि ग्रसनिक से निकलती है।

4. मुख :– ध्वनियों की उत्पत्ति में मुख का योगदान सबसे महत्वपूर्ण है। इसको मुख विवर कहा जाता है। मुख विवर के उपर एक गोलाकार छत है। और मुख विवर के नीचे जिह्वा है। सबसे पीछे कोमल तालु है। जहां एक छोटा–सा मांसपिण्ड लटका हुआ है। इस मांसपिण्ड को अलिजिह्वा अथवा काकल कहते हैं। कोमल तालु ध्वनियों के उच्चारण के समय उपर–नीचे होता रहता है। और उपर जाकर नासिका मार्ग को बंध कर देता है। नीचे आकार उसे खोल देता है। कोमल तालु के आगे कठोर तालु है जो तालु का मध्य भाग है। कठोर तालु के आगे दन्तकूट या मूर्धा और आगे बढ़ने पर दंत पंक्तियां है और उनसे भी आगे ओष्ठ। इनसे ही ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है।

ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का सबसे ज्यादा प्रयोग होता है। इसके चार भाग माने गए हैं :–

1. जिह्वा पश्च :– यह कोमल तालु के सामने वाला हिस्सा है,

2. जिह्वा पृष्ठ :– यह कठोर तालु के सामने वाला हिस्सा है।

3. जीहवाग्र :– यह दन्तकूट के सामने वाला हिस्सा है।

4. जीहवाणी :– जीभ के आगे का बिल्कुल नुकीला हिस्सा है।

इस प्रकार मुख विवर के अनेक अवयवों से ध्वनियां उत्पन्न होती है।

5. नासिका विवर :– नासिका और मुख की छत के बीच जो खाली स्थान है वह नासिका विवर है, इस का उपयोग नासिका विवर है। इसका उपयोग अनुनासिक वर्णों के लिए होता है।

2.2.3 स्वन की अवधारणा और वर्गीकरण :–

स्वन से तात्पर्य है–ध्वनि। वास्तव में भाषा के दो पक्ष हैं – 1 अभिव्यक्ति 2. ग्रहण।

भाषा की अभिव्यक्ति वक्ता के द्वारा ध्वनियों के रूप में होती है। और श्रोता के द्वारा श्रवणेन्द्रिय के माध्यम से उसका ग्रहण होता है। वक्ता जब कुछ बोलना चाहता है तो उसे संदर्भ के अनुसार बोलने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। यह प्रयत्न भी दो प्रकार का होता है।

1. मुख विवर के बाहर

2. मुख विवर के अन्दर

इस दृष्टि से प्रयत्न दो हैं :–

1. आभ्यांतर 2. बाह्य।

वक्ता प्रयत्न–पूर्वक अपनी प्राणवायु को फेफड़ो के माध्यम से श्वास नलिक की ओर उर्ध्वगामी (उपर की ओर) बनाता है। और यह प्राणवायु हमारी स्वर–तंत्रियों से कभी संघर्ष करती हुई, कभी बिना संघर्ष के और कभी समाहृत होकर घोष, अघोष और जपित ध्वनियों के रूप में अपने स्थानों का स्पृश करती हुई निकलती है। यही ध्वनि हमें जगत और जीवन से जोड़ती है। ध्वनियों के सार्थक समष्टि, शब्द और शब्दों की यथोचित, अन्विति ही वाक्य कहलाती है। यही वाक्य भाषा विज्ञान की दृष्टि से भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि है, ध्वनि के तीन पक्ष है–

उत्पादन, वहन और ग्रहण। ध्वनि से भी पहले कठ्यशास्त्र के आचार्यों एवं वैयाकरणों स्फोट की स्थिति मानी है। ध्वनियों का जो स्फोट होता है, वह अनिध्य होता है। उदाहरण के लिए जब हम गाय शब्द का उच्चारण करते हैं तो पहले ग की ध्वनि, फिर आ की ध्वनि फिर य की ध्वनि और फिर अ की ध्वनि हमारे उच्चारण तंत्र से निकलती हैं ये ध्वनियां मुख से निकलने के साथ ही विलीन हो जाती है, ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठता है कि जब ध्वनियां वक्ता के मुख से प्रस्फुलित होते ही विलीन हो जाती है तो श्रोता उन्हें सुनता कैसे हैं। और उसका अर्थ कैसे ग्रहण करता है। भाव यह है कि ग् कहते ही जब तक हम आ कहते हैं तब तक ग ध्वनि विलीन हो जाती है। और आ ध्वनि के बाद य कहते ही आ ध्वनि विलीन हो जाती है। ऐसी स्थिति में सभी ध्वनियों का श्रवण और अर्थबोध कैसे होता है? इसके उत्तर में स्फोटवादी कहते हैं कि वक्ता के मुंह से क्रमशः ध्वनियां निकलती है और विलीन होती रहती है। लेकिन श्रोता स्फोट को ग्रहण करता रहता है और पूरी ध्वनियों के सुनने के बाद मानसिक सत्ता के रूप में उस ध्वनि समूह को जो उसके मानसिक सत्ता के रूप में उस ध्वनि समूह को जो उसके मस्तिष्क में विद्यमान है उसी का अर्थबोध श्रोता करता है।

स्वनों का वर्गीकरण :–

मनुष्य के मुख विवर और कण्ठ से अनेक प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न होती हैं। कुछ ध्वनियां कोमल, कुछ कठोर, कुछ तीव्र और कुछ मंद होती है ऐसा क्यों होता हैं? जब हम इस प्रश्न का उत्तर ढूढ़ते हैं तब ध्वनियों के आधारों के विषय में जिज्ञासा होती है हर ध्वनि मुख विवर में किसी न किसी स्थान से उत्पन्न होती है। उसके उत्पादन में वक्ता को कुछ न कुछ प्रयत्न भी करना पड़ता है और उसके उत्पादन के लिए किसी न किसी इन्द्रिय (करण) का आश्रय भी लेना पड़ता है। इस प्रकार ध्वनियों के वर्गीकरण के तीन प्रमुख आधार है–

1. स्थान 2. करण 3. प्रयत्न।

इन तीनों का आपेक्षिक महत्व है। जैसे क और प में जो अंतर है, वह उच्चारण स्थान का अंतर है, और क तथा ख में जो अंतर है वह प्रयत्न का अंतर है। इसी प्रकार एक ही स्थान कण्ठ से उच्चरित होने वाले क या ख में ख और ग में तथा ग और घ में प्राणवायु संबंधी अंतर

हो जाता है। जिसे हम प्रयत्न का अंतर कहते हैं। अभिप्राय यह है कि ध्वनियों में अंतर स्थान और प्रयत्न के अंतर से होता है।

(जिस ध्वनि के उच्चारण में कम ध्वनि लगानी पड़े, वहां अल्पप्राण होता है)

करण का अर्थ है इन्द्रिय। जिस प्रकार ध्वनियों का उच्चारण में एक ही स्थान या एक ही प्रयत्न से नहीं होगा उसी तरह ध्वनियों के उच्चारण में एक नहीं रहता। करण और स्थान में अंतर है। स्थान अचल होते है और करण गतिमान या चल। उदाहरण के लिए तालु को स्थान कहेंगे और जिह्वा का करण। इसी प्रकार कोमल तालु के पीछे का हिस्सा कौव्वा लटका हुआ है वह स्थान भी करण है। क्योंकि कुछ ध्वनियों के उच्चारण मे वह उपर–नीचे होता रहता है। भाषा वैज्ञानिकों में करण और स्थान को प्राय एक मात्र लिया है। इसीलिए ध्वनियोंके वर्गीकरण के मुख्यतः दो आधार है –

1. स्थान 2. प्रयत्न। किन्तु आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के मत में कुछ ध्वनियां करण हैं और उनके आधार पर ध्वनियों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

1. स्थान – इस दृष्टि से निम्नलिखित स्थान महत्वपूर्ण है।

1. काकल 2. कण्ठ 3. तालु 4. मुर्धा 5. वर्त्स 6. दन्त 7. ओष्ठ।

इन स्थानों से उच्चरित ध्वनियां, क्रमशः काकल से काकल्य, कण्ठ से कण्ठय, तालु से तालव्य, मूर्धा से मूर्धन्य, वर्त्स से वर्त्स्य दन्त से दन्तय्, ओष्ठ से ओष्ठय, कहलाती है।

1. काकल्य :– इस ध्वनि के उच्चारण में मुख विवर खुला रहता है। और विश्वास बंद कण्ठ द्वार को वेग से खोल कर के बाहर निकलता है।

जैसे :– ह, श, ष,स।

2. कण्ठ्य :– इन ध्वनियों के उच्चारण में जिहवा का पिछला भाग कोमल तालु का स्पर्श करता है जैसे – क, ख, ग, घ।

3. तालव्य :– जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का अग्र भाग कठोर तालु को स्पर्श करता हुआ होता है, वह तालव्य कहलाता है, जैसे :– च, छ, ज, झ।

4. मूर्धन्य :– ऐसी ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोक प्रायः उलटकर मूर्धा का स्पर्श करती है। कभी–कभी जिह्वा का उलटन अनिवार्य नहीं होता। उसकी नोंक से सीधे–सीधे मूर्धा का स्पर्श करके ये ध्वनियां उत्पन्न की जाती हैं। जैसे :– ट, ठ, ड, ढ़, ऋ।

5. वर्त्स्य :– ऐसी ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोक दांतों के उपरी भाग का स्पर्श करती है। जैसे – ल।

6. दन्त्य :– जिह्वा की नोक दन्त पंक्तियों को छूती है जैसे त, थ, द, ध।

7. ओष्ठय :– ऐसी ध्वनियों के उच्चारण में दोनों ओष्ठ परस्पर एक–दूसरे को छूते हैं। इसके दो भेद हैं:–

1. दन्तोष्ठ्य 2. द्वयोष्ठय।

1. दन्तोष्ठ्य :– ऐसी ध्वनियों के उच्चारण में नीचे का ओष्ठ उपर की दंत पंक्तियों को छूता है। जैसे – व और अंग्रेजी की वी ध्वनि दोनों दन्तोष्ठ्य है।

2. द्वयोष्ठ्य :– ऐसी ध्वनियों के उच्चारण में दोनों होठ परस्पर एक–दूसरे का स्पर्श करते हैं। जैसे – प, फ, ब, भ, म।

करण के आधार पर वर्गीकरण :–

ध्वनियों के उच्चारण में जो इन्द्रियां गतिशील होती हैं उन्हें करण कहते हैं। इस दृष्टि से हम निम्नलिखित इन्द्रियों को करण की शैली में रखकर उन पर विचार कर सकते हैं।

1. अधरोष्ठ :– कुछ ध्वनियों के उच्चारण में उपर का ओष्ठ स्थिर बना रहता है लेकिन नीचे का अधर अनेक रूप धारण करता है। कभी वह उपर के ओष्ठ को छुता है कभी दंत की पंक्तियों को, इस तरह उसे करण कहा जा सकता है।

2. जिह्वा :– जिहवा एक ऐसा करण है जो ध्वनियों के उच्चारण में सबसे अधिक गतिशील रहती है।

3. कोमलतालु :– कोमल तालु स्थान भी है और करण भी। जिह्वा की तरह वह अधिक गतिशील नहीं रहता इसीलिए इसकी तुलना में वह स्थान है लेकिन अनुनासिक वर्णों के उच्चारण वह कभी उपर कभी नीचे की ओर आता जाता रहता है। इसीलिए इसे करण मान लेते हैं।स्थान प्रयत्न और करण के मेल से अनंत ध्वनियां उत्पन्न होती है,

ध्वनि क्या है और वर्गीकरण :–

प्रयत्न दो प्रकार का होता है 1. आभ्यंतर 2 बाह्य

मुख विवर के भीतर होठ से लेकर कण्ठ तक जो प्रयत्न किए जाते हैं उन्हें आभ्यंतर कहे जाते हैं।

कण्ठ से नीचे फेफड़ो की ओर जो प्रयत्न किये जाते हैं उन्हें बाह्य कहते हैं।

1. आभ्यंतर प्रयत्न :– ये चार माने गये हैं –

1 स्पृष्ट 2 ईषत् स्पृष्ट 3 विवृत 4 ईषद् विवृत।

कुछ लोग पांचवे को भी स्वीकार करते हैं वो है संवृत।

1. स्पृष्ट :– जिन ध्वनियों के उच्चारण में हमारी जिह्वा ओष्ठ से लेकर कण्ठ तक भिन्न–भिन्न स्थानों का स्पृश करती है, ये ध्वनियां स्पृष्ट कही जाती है। यह उन ध्वनियों का स्पृष्ट प्रयत्न है जैसे क से लेकर म तक 25 ध्वनियां।

2. ईषत् स्पृष्ट :– जिन ध्वनियों के उच्चारण में उच्चारण स्थान और करण का हल्का–सा स्पर्श किया जाता है या होता है, वे ईषत (थोड़ा) स्पृष्ट होते हैं जैसे य, व।

3. विवृत :– वि का मतलब विशेष, वृत का मतलब – खुला हुआ,

जिन ध्वनियों के उच्चारण में मुख–विवर बिल्कुल खुला रहता है, लेकिन जिह्वा किसी भी स्थान स्पृश नहीं करती, वे ध्वनियां विवृत कहलाती हैं। जैसे – अ, आ, इ, ई, उ, उ, ए, ऐ, ओ, औ,

4. ईषत् विवृत :– (थोड़ा सा मुख खुला रहना)

जिन ध्वनियों के उच्चारण में मुख–विवर थोड़ा–सा खुला रहे तो ईषद् विवृत होता है।

5. संवृत :– अच्छी तरह से बंद।

जिन ध्वनियों के उच्चारण में मुख–विवर लगभग बंद रहता है वे संवृत ध्वनियां कहलाती हैं लेकिन इसका व्यावहारिक प्रयोग आजकल नहीं हो रहा है। वैदिक और हस्व और ध्वनि इससे बोली जाती है।

2. बाह्य प्रयत्न :– यह 11 प्रकार का होता है।

1. विवार 2. संवार 3. श्वास 4. नाद 5. घोष 6. अघोष 7. अल्पप्राण 8. महाप्राण 9. उदान्त 10. अनुदस्त 11. संवृत।

1. विवार :– ध्वनियों के उच्चारण में जब स्वर–तंत्रियां बिल्कुल खुली रहती है।

2. संवार :– इनमें स्वर–तंत्रियां बंद रहती है।

3. श्वास :– विश्वास का निर्वाद रूप से बाहर निकलना श्वास प्रयत्न कहलाता है।

4. नाद :– जब स्वर तंत्रियां मिली रहती है और ध्वनि के उच्चारण में कम्पन हो तब नाद प्रयत्न होता है।

5. अघोष :– श्वास प्रयत्न ही अघोष कहा जाता है। वर्गों के पहले और दूसरे वर्ण इसके अर्न्तगत आते हैं।

6. घोष :– नाद प्रयत्न का दूसरा नाम घोष है, वर्गों के तीसरे चौथे और पांचवें वर्ण इसके अंतर्गत आते हैं।

7. अल्पप्राण :– जिन ध्वनियों के उच्चारण में थोड़ी प्राणवायु का प्रयोग होता है, वे अल्पप्राण ध्वनियां है

जैसे :– क, च, ट, त, प इत्यादि।

8. महाप्राण :– जिन ध्वनियों के उच्चारण में प्राणवायु का अधिक प्रयोग होता है, उसे महाप्राण कहते हैं, वर्गों के दूसरे और चौथे वर्ण महाप्राण होते हैं,

जैसे – ख, घ, छ, झ।

9. उदात्त :– आरोही स्वर उदात कहे जाते हैं। जैसे– ओहम में ओ शब्द उदात्त है।

10. अनुदात :– अवरोही स्वर अनुदात कहे जाते हैं।

11. सवृंत :– संवृत का अर्थ है सम, जो स्वर ना आरोही और न ही अवरोही हो उसे संवृत कहते हैं। इन्हीं आधारों पर स्वर और व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण किया जाता है।

स्वर ध्वनियों का वर्गीकरणः–

(1) स्थान के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण :–

1. कण्ठ्य – कण्ठ से उच्चरित होने वाले स्वर को कण्ठ्य स्वर कहते हैं। जैसे– अ

2. तालव्य :– तालु से उच्चारित होने वाले स्वर को तालव्य स्वर कहते हैं।जैसे – ई, इ।

3. मूर्धन्य :– जिस स्वर का मूर्धा से उच्चारण किया जाता है उसे मूर्धन्य कहते हैं। जैसे – ऋ।

4. दन्त्य :– जिन स्वरों का उच्चारण दन्त स्थान से बोला जाए उसे दन्त्य कहते हैं। जैसे – लृ।

5. ओष्ठय :– जिस स्वर का उच्चारण ओठों से होता है। जैसे– उ, उ।

6. अनुनासिक :– जिस स्वर का उच्चारण मुख और नासिका दोनों से हो उसको हम अनुनासिक कहते हैं। जैसे –आं (आंगन)

7. कण्ठ तालव्य :– जो स्वर कण्ठ्य और तालु से हो उसे कण्ठ तालव्य कहते हैं। जैसे – ए, ऐ।

8. कण्ठोष्ठय :– जो स्वर कण्ठ और ओष्ठ दोनों से बोले जाए, वह कष्ठोष्ठय स्वर होता है, जैसे – ओ, औ।

9. दन्तोष्ठ्य :– जिस स्वर का उच्चारण दंत और ओष्ठ, से होता है, जैसे – व (v)

(2) प्रयत्न के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण :–

इस आधार पर स्वरों का विभाजन निम्नलिखित तीन प्रकार से किया जाता है।

1. जिह्वा की स्थिति के आधार पर

2. ओष्ठों की स्थिति के आधार पर

3. कण्ठ की मांसपेशियोँ स्थिलता और दृढ़ता के आधार पर।

1. जिहवा की स्थिति के आधार पर :– स्वर ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की दो स्थितियां होती हैं।

1 पड़ी स्थिति 2 आड़ी स्थिति।

(1) जिह्वा की पड़ी स्थिति के आधार पर स्वरों के चार भेद होते हैं।

1. सम्वृत :– जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा बिना किसी संघर्ष के उपर की ओर उठ जाती हैं और जिह्वा और मुख विवर के उपरी भाग की ओर दूरी कम से कम होती जाती है। जैसे :– उ, उ।

2. ईषत् संवृत :– जिस स्वर के उच्चारण के समय जिह्वा और मुख के उपरी भाग की दूरी संवृत की अपेक्षा कुछ अधिक होती है, उन्हें ईषत् संवृत अथवा अर्थ संवृत भी कहा जाता है जैसे :– ऐ, ओ।

3. विवृत्त :– जिस स्वर के उच्चारण में जिह्वा और मुख विवर का उपरी भाग में अधिक से अधिक दूरी बनी रहती है, मुंह खुला रहता है। जैसे :– आ,

4. ईषत् विवृत्त :– जिस स्वर के उच्चारण में जिह्वा और मुख विवर के उपरी भाग की दूरी विवृत की अपेक्षा कम हो, उसे ईषत् विवृत कहते हैं जैसे :– ओ, इसी को अर्थविवृत भी कहते हैं।

(2) जिह्वा की आड़ी स्थिति के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण :–

जिह्वा की आड़ी स्थिति के तीन आधार हैं :–

1. अग्रस्वर 2. मध्यस्वर 3. पश्चस्वर।

1. अग्रस्वर :– जिस स्वरों के उच्चारण में जिह्वा का उपरी भाग तालु की ओर थोड़ा उपर उठता है, लेकिन तालु का स्पर्श नहीं करता। जैसे– इ, ई, ए, ऐ।

2. मध्यस्वर :– जिन स्वरों के उच्चारण में जिह्वा में मध्यस्वर उपर उठता है, उसे मध्यस्वर कहते हैं। जैसे – अ, ई,

3. पश्चस्वर :– पिछला उच्चारण कोमल तालु की ओर करके ध्वनियों को प्रभावित करता है, निश्वास ध्वनि को रोकता है। जैसे – उ, उ, आ, ओ।

(वर्गों में दो वर्ग ऐसे हैं जो हर भाषा में प्रयोग करते हैं।)

(2) ओष्ठों की स्थिति के आधार पर स्वरों के तीन भेद होते हैं।

1. अवृताकार :– जिन ध्वनियों के उच्चारण में ओष्ठों की स्थिति स्वाभाविक बनी रहती है, उन्हें अवृताकार स्वन कहते हैं, जैसे – ई, इ, ए, ऐ।

2. वृत्ताकार :– जिन स्वर ध्वनि उच्चारण में ओष्ठों की स्थिति गोल हो जाती है। जैसे :– उ, उ।

3. अर्धवृत्ताकारः– जिन स्वर ध्वनि उच्चारण में ओष्ठ न तो पूर्ण वृताकार लगते हैं और न ही अवृताकार में होते हैं, अर्धवृताकार बनते हैं। जैसे :– आ,

कण्ठ की मांसपेशियों के आधार पर :–

1. दृढ़ 2. शिथिल

1. दृढ़ :– जिन स्वरों के उच्चारण में हमारे कण्ठ की मांसपेशियां खिंचाव में आ जाती हैं जैसे :– ई, उ,ऋ।

2. शिथिल :– जिन स्वर ध्वनियों के उच्चारण में कण्ठ, पीटक और चिडक के बीच की मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं, तनाव में नहीं आता जैसे :– उ, उ।

इनके अतिरिक्त हिन्दी मे आठ मानक स्वर हैं जिनमें चार अग्रस्वर चार मान स्वर या मूल स्वर। इनके अतिरिक्त संयुक्त स्वर के रूप में भी कुछ स्वर है जो दो स्वरों के संयोग से बने हैं–

अ + इ = ई, अ + ए = ऐ,

अ + उ + उ = ओ, अ + ओ = औ।

व्यंजन ध्वनि का वर्गीकरण :–

व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण की तीन अवस्थाएं होती हैं।

1. व्याघात 2. अवरोध 3. मोचन।

व्यंजनों का वर्गीकरण दो आधार पर होता है।

1. स्थान के आधार पर

2. प्रयत्न के आधार पर।

1. स्थान के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण :–

1. काकल्य :– जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण काकल्य स्थान से होता है, उन्हें काकल्य व्यंजन कहते हैं, इन ध्वनियों के उच्चारण के समय मुख विवर खुला रहता है और विश्वास हमारे कण्ठ स्वर को झटके से खोल कर के बाहर निकलते हैं। जैसेः– ह।

2. कष्ठ्य :– जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण कण्ठ से होता है तथा जिह्वा का पिछला भाग कोमल तालु से स्पर्श करता है जैसे :– क, ख, ग, घ।

3. तालव्य :– जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण तालु से होता है और जिह्वा का उपाग भाग कठोर तालु का स्पर्श करता है, उसे तालव्य कहते हैं, जैसे :– च, छ, ज, झ।

4. मूर्धन्य :– जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण मूर्धा से होता है और जिह्वा की नोक को उलटकर उसके नीचे हिस्से कठोर तालु के मध्य भाग को स्पर्श करता है। जैसे :– ट, ठ, ड, ढ।

5. वर्त्स्य :– जिन व्यंजनों का उच्चारण वर्त्स्य में होता है, वे वर्त्स्य व्यंजन कहलाते हैं, जिह्वा तालु के अंतिम भाग और मसूड़ों को स्पर्श करती हैं जैसे :– ह्रास।

6. दन्त्य :– जिन व्यंजनों का उच्चारण उपर की दन्त पंक्ति से होता है। विशेषकर आगे के दो दांत।

जैसे :– त, थ, द, ध, स और ल।

7. ओष्ठ्य :– जिन व्यंजनों के उच्चारण में दोनों ओष्ठ सहायक होते हैं छूते हैं और हट जाते हैं। जैसे – प, फ, व, म।

8. दन्तोष्ठ्य :– जिन व्यंजनों का उच्चारण दांत व ओष्ठ की सहायता से होता है, और जिह्वा दांतों को पूरी तरह से नहीं छूती, और दोनों ओष्ठ भी आपस में एक–दूसरे को स्पृश नहीं करते। जैसे व।

9. जिह्वामूलीय :– जिन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण जिह्वा की मूल या जड़ से होता है, हिन्दी में फारसी, भाषा में आई हुई ध्वनि या इसका उदाहरण है, जैसे :– क, ख, ग,

2. प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण :–

(1) आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों को हम इस प्रकार वर्गीकृत करते हैं :–

1. स्पर्श व्यंजन :– जिन ध्वनियों के उच्चारण में हमारी जिह्वा कण्ठ से लेकर ओष्ठ तक सभी अवयवों का स्पर्श करती हैं। उन्हें स्पर्श व्यंजन कहते हैं (Plosive) क से लेकर म तक सभी स्पर्श व्यंजन है।

2. स्पर्श संघर्णी :– जिन व्यंजनों के उच्चारण में हमारी जिह्वा स्पर्श के साथ–साथ निश्वास के निकलने में थोड़ा संघर्ष भी पैदा हो, उन्हें स्पर्श संघर्षी व्यंजन कहते हैं। कुछ भाषा वैज्ञानिक च, छ, ज, झ ध्वनियों को स्पर्श संघर्णी कहा है। किन्तु वास्तव में ये स्पर्श ध्वनियां हैं, जब च और ज ध्वनियां संयुक्त व्यंजन के रूप में आती है, वहां ये स्पर्श संघर्षी हो जाती है, जैसे :– याच्मा। ज्येष्ठ शब्दों में च और न स्पर्श संघर्षशील हैं। इसी तरह संस्कृत उच्यते, पच्यते आदि कर्म वाच्य क्रियाओं में च स्पर्श संघर्षशील है। पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक ग्लीसन ने भी हिन्दी की च, छ, ज, झ ध्वनियों को स्पर्श ही माना है, स्पर्श संघर्णी नहीं।

3. संघर्णी :– जिन व्यंजनों और उच्चारण मे हमारी निश्वास वायु जीभ के दबाव के कारण रगड़ खाकर बाहर निकलती है, उन्हें संघर्णी व्यंजन कहते हैं। जैसे :–श, ष, स।

4. पार्श्विक :– जिन व्यंजनों का उच्चारण करते समय जिह्वा तट की नोंक मूर्धा को छूती है और निश्वास वायु दोनों पार्श्वों से बाहर निकलती है, उन्हें पार्श्विक व्यंजन कहते हैं। जैसे :– ल।

5. लुंठित या लोडित :– लुंठित ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोंक पार्श्विक वाली स्थिति में होती हुई हमारे वर्त्स पर अनेक या अनेक बार ठोकर मारती है। जैसे :– र, ह।

6. उत्क्षिप्त ध्वनि :– जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा तालु के किसी भाग को झटके से छूकर पीछे हट जाती है, उन्हें उत्क्षिप्त व्यंजन कहते हैं जैसे :– ड, ढ़।

7. अन्तस्थ, या अर्धस्वर :– ये वे ध्वनियां हैं जिनके उच्चारण में जिह्वा न तो किसी अवयव को पूरी तरह छूती है और न ही स्वरों के उच्चारण के समान पार्थक्य बना रहता है। जैसेः– य, व । इन्हीं को अर्धस्वर भी कहते हैं।

8. अनुनासिक :– ये वे ध्वनियां हैं जिनके उच्चारण में हमारी निश्वास वायु मुख और नासिका दोनों से निकलती है। जैसे कि आचार्य पाणिनी अपनी अष्टाध्यायी के एक सूत्र में कहा है–––

मुख नासिका वचनोडनुनासिका

जैसे :– सभी वर्गों के अंतिम वर्ण (ड. न, ण, न, म)

(2) बाह्य प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण :–

बाह्य प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों के निम्नलिखित भेद किए गए हैं –

1.विवार :– जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्वस्तत्रियां विशेष रूप से खुली रहती है, उन्हें विवार कहा जाता है। जैसे :– क, च, ट, त, प इत्यादि।

2. संवार :– जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्वरस्तन्त्रियां बंद हो जाती है, उन्हें संवार कहते हैं, वर्गों के तीसरे वर्ण इसके उदाहरण है :–

ग, ज, ड, द, व इत्यादि,

3. श्वास :–जिन व्यंजनों के उच्चारण के समय हमारी विश्वास, प्रश्वास वायु अबोध रूप से चलती रहती है। वे व्यंजन श्वास कहे जाते हैं, जैसे :– ख, छ, ठ, थ, फ इत्यादि।

4. नाद :– जिन व्यंजनों के उच्चारण के समय स्वर तंत्रियों में कम्पन होता है, उन्हें नाद कहते हैं, जैसे :– ड़, ण, ळ, न इत्यादि।

5. घोण :– जिन व्यंजनों के उच्चारण में निश्वास वायु घोषणा करती हुई बाहर निकलती है, ये घोण कहे जाते हैं। वर्गों के तीसरे, चौथे, पांचवें वर्ण घोण हैं।

6. अघोण :– जिन व्यंजनों के उच्चारण में अघोषित रूप में होता है, वे अघोण व्यंजन है। वर्गों के पहले और दूसरे व्यंजन इसके उदाहरण है।

7. अल्पप्राण :– जिन व्यंजनों के उच्चारण में निश्वास वायु कम प्रयुक्त होती है, वे अल्प प्राण व्यंजन है, वर्गों के पहले, तीसरे और पांचवे वर्ण इसके उदाहरण है।

8. महाप्राण :– जिन व्यंजनों के उच्चारण में निश्वास वायु का अधिक प्रयोग है। वर्गों के दूसरे और चौथे वर्ण इसके उदाहरण है।

इनके अतिरिक्त जब दो या दो से अधिक स्वर रहित व्यंजन संयुक्त होकर भाषा में प्रयुक्त होते हैं तो उन्हें संयुक्त व्यंजन कहते हैं।

जैसे :– पक्का कुआं (क + क + आ)

क्ष (क + स + अ), त्र (त + र + अ)

इसके अतिरिक्त कुछ क्लिक ध्वनियां भी होती हैं। इनके उच्चारण के समय निश्वास वायु अन्दर की ओर खींची जाती है।

2.2.4 स्वन गुणों का विवेचन :—

ध्वनियों की कुछ सामान्य विशेषताएं होती हैं जिन्हें ध्वनियों का गुण कहते हैं। इन गुणों का संबंध ध्वनि के संघटन (strcture) से रहता है, जब हम ध्वनि का उच्चारण करते हैं तो अनुभव करते हैं कि कुछ ध्वनियों के उच्चारण में कम समय लगता है तो कोई ध्वनि उंचे स्वर में बोली जाती है तो कोई निम्न स्वर में। किसी ध्वनि के उच्चारण में अधिक बल और किसी में कम। किसी ध्वनि का उच्चारण द्रुत गति से होता है तो किसी का विलम्बित गति से, जैसे :— करण। इन्हीं को ध्वनियों का गुण कहते हैं। सामान्य रूप में चार ध्वनि गुण स्वीकृत है।

1. मात्रा 2. स्वर 3. आघात 4. वृत्ति।

1. मात्रा :— मात्रा का संबंध उच्चारण काल से है। काल का वह अंश जो किसी ध्वनि के उच्चारण में लगता है, वह मात्रा कहलाता है। मात्रा के तीन भेद हैं,

1. हस्व 2. दीर्घ 3. प्लुत।

1. हस्व :— जिस ध्वनि के उच्चारण में एक मात्रा काल लगता है उसे हस्व कहते हैं,

2. दीर्घ :— जिस ध्वनि के उच्चारण में हस्व ध्वनि से दो गुना समय लगता है उसे दीर्घ कहते हैं।

3. प्लुत :— जिस ध्वनि के उच्चारण में हस्व की ध्वनि से तिगुना समय लगे।

पाणिनिय शिक्षा इस प्रकार कही है————

एक मात्रा भवेत् हस्वः, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।

त्रिमात्रस्तु प्लुतों ज्ञेयम्, व्यंजनम् चार्ध मात्रिकम् जैसे :– अ हस्व है। आ दीर्घ है और ओइम में ओ प्लुत है।

जब हम किसी को दूर से बुलाते हैं तो उसका पहला वर्ण प्लुत हो जाता है, जैसे :–राम, राघव, राइडम।

कई बार नाम का अंतिम अक्षर प्लुत हो जाता है। इसी तरह व्यंजन कई बार चौथाई भी हो जाता है। जिस तरह से सम्हाल, तुम्हारा कुम्हार में म की ध्वनि 1/4 है या चौथाई है,

वास्तव में हस्व, दीर्घ और प्लुत का मात्रा संबंधी भेद बहुत कुछ स्थूल है, पहली बात तो यह है कि मात्रा का कोई निश्चित मान नहीं है। यद्यपि सारा ध्वनियां सामान्य रूप से दीर्घ मानी जाती है लेकिन उसका भी उच्चारण हस्व जैसा होता है। तीसरी बात यह है कि एक ही ध्वनि विभिन्न संदर्भ में उच्चारण भिन्न हो जाता है, इसीलिए हस्व, दीर्घ और प्लुत को परस्पर सापेक्ष मानना चाहिए।

छन्द शास्त्र में कुछ विशेष परिस्थितियों में हस्व ध्वनि दीर्घ मान ली जाती है, जैसे :– संयुक्त व्यंजनों के पूर्व की ध्वनि यदि हस्व हो तो भी दीर्घ अर्थात गुरू मान ली जाती है, जैसे :– उपन्यास। इसी प्रकार चाचा, दादा, मामा आदि शब्दों में पहले आ की अपेक्षा प्रायः दूसरे आ की ध्वनि, हस्व हो जाती है और कभी–कभी तो केवल चा या दा सुनाई पड़ता है, इसीलिए वर्णों की ध्वनियों की मात्रा संबंधी सख्या केवल स्थूल दृष्टि से मानी जा सकती है।

2. सुर (स्वर) :– ध्वनि को उत्पन्न करने वाले कम्पन्न की आवृत्ति पर स्वर निर्भर होता है, कम्पन जितना ही आर्थिक होगा, स्वर उतना ही उंचा होगा और कम्पन जितना कम होगा, स्वर उतना ही कम होगा। जब हम स्वर की आवृत्ति या कम्पन की आवृत्ति करते हैं तो स्वरतंत्रियां तनाव की स्थिति में आ जाती हैं और जब कम्पन की आवृत्ति कम होती हैं तो स्वस्तन्त्रियां ढ़ीली पड़ जाती हैं। सामान्य रूप से स्वर तीन माने गए हैं।

1. उच्च 2. निम्न 3. सम।

1. उच्च स्वर में आरोह की स्थिति होती है।

2. निम्न स्वर में अवरोह की

3. और सम स्वर में आरोह और अवरोह के बीच की स्थिति होती है और इन ध्वनियों को अंकित करने के लिए चिन्ह भी बने हैं जैसे :– उच्च स्वर / निम्न स्वर /, सम स्वर –।

हमारी वैदिक भाषा स्वर प्रधान थी और अनिवार्य रूप से स्वरों का प्रयोग किया जाता था। इसी को उदात्त, अनुदात्त, स्वरित कहते हैं।

स्वरों का प्रयोग केवल ध्वनियों में ही नहीं शब्दों और वाक्यों में भी होता है। उस काकु कहते हैं, जब हम प्रेम, घृणा, क्रोध आश्चर्य, व्यंग्य आदि प्रकट करते हैं तो ऐसे ही स्वरों का प्रयोग काकु के माध्यम से करते हैं और शब्दों तथा वाक्यों के एक ही शब्द, वाक्य के अनेक अर्थ हो जाते हैं।

3. आघात :– किसी ध्वनि पर विशेष बल देकर उसका उच्चारण किया जाता है, अंग्रेजी में इसे Accent कहते हैं, भाषा विज्ञान में इसी को बलाघात या स्वराघात कहते हैं, ये तीन प्रकार के हैं :–

1.बलात्मक स्वराघात 2. रूपतामक स्वराघात 3. संगीतात्मक स्वराघात।

1. बलात्मक स्वराघात :– इस प्रकार के स्वराघात में किसी ध्वनि पर विशेष बल देकर उसका उच्चारण किया जाता है जिससे वह ध्वनि सबल बन जाती है, जैसे :– पंडित जी में हम ड पर बड़ी ई की मात्रा बल देकर बोलते हैं जिससे इ ध्वनि सबल बन जाती है। त ध्वनि इतनी निर्बल हो जाती है कि वह सुनाई ही नहीं पड़ती।

महर्षि पंतजलि ने इसके उदाहरण में इन्द्रशत्रु शब्द का उल्लेख किया है। यदि इन्द्र शब्द पर बलात्मक स्वराघात किया जाता है तो बहुब्रीहि समास हो जाता है। इन्द्र है शत्रु जिसका जब शत्रु शब्द पर जोर दियाा जाता है तो तत्पुरूष समास हो जाता है जिसका अर्थ होता है इन्द्र का शत्रु।

2. रूपात्मक स्वराघात :– इसका संबंध मुख्य रूप से स्वस्तन्त्रियों की बनावट से होता है। इसीलिए किसी का स्वर थोड़ा मोटा तो किसी का स्वर पतला होता है, स्त्री और पुरूष के स्वर में अंतर होता है।

3. संगीतात्मक स्वराघात :– जब स्वस्तन्त्रियों में तनाव या स्थिरता होती है तो उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वर निकलते हैं तो संगीतात्मक, स्वराघात है।

4. वृत्ति :– उच्चारण की गति को वृत्ति कहते हैं। वृत्ति तीन प्रकार की होती है।

1. द्रुत 2 विलम्बित 3. मध्यम।

1. द्रुत :– जल्दी गति से बोलना जैसे :– बच्चों का कोई याद की हुई कविता का बोलना। उच्चारण की तेज गति को द्रुत गति कहते हैं।

2. विलम्बित :– उच्चारण की मंद गति को विलम्बित गति कहते हैं, जैसे :– कक्षा में शिक्षक बोलते हैं, उपदेशक आदि की उच्चारण गति विलम्बित होती है,

3. मध्यम :– तीव्र और विलम्बित गति के बीच को मध्यम गति कहते हैं जब हम आपस में बात करते हैं तो मध्यम गति का प्रयोग करते हैं।

भाषा का ठीक–ठाक व्यवहार करने के लिए इन ध्वनि गुणों का ज्ञान और व्यवहार अत्यंत आवश्यक है।

2.2.5 ध्वनि विकास या स्वनिक परिवर्तन :–

इस संसार में परिवर्तन और विकास दोनों शब्द प्रायः एक ही भाव को व्यक्त करते हैं। परिवर्तन ही विकास है और विकास को ही हम परिवर्तन कह सकते हैं। भाषा का विकास उसके विभिन्न अवयवों में होने वाले परिवर्तन से ही होता है। प्राचीन आचार्य इसे विकास न कर करके

ह्रास अथवा अपभ्रंश कहते रहे। लेकिन भाषा विज्ञान यह मानता है कि व्याकरण की दृष्टि से जो विकार है भाषिकी की दृष्टि से वह विकास है।

भाषा में परिवर्तन ध्वनियों के परिवर्तन से होता है। इस ध्वनि विकास या ध्वनि परिवर्तन में सबसे प्रमुख कार्य प्रयत्न लाघव या सुख–सुविधा है जो अनेक प्रकार से ध्वनि परिवर्तन का कारण बनता है। जैसे :– लाइब्रेरी को रायब्रेरी कहना, फिजूल को बेफिजूल कहना, कमांडर को कमन्दर कह देना। ये ध्वनियां विदेशी हैं, इनका उच्चारण मुश्किल है खासकर अनपढ़ लोगों के लिए। इसलिए उनसे मिलती–जुलती स्वदेशी ध्वनियों ने इनका स्थान ले लिया है। इसी तरह कैप्टन से कप्तान हॉस्पीटल से अस्पताल ध्वनि परिवर्तन का कारण है।

प्रयत्न लाघव से कई बार ध्वनियों के परिणाम को कम कर दिया जाता है। जैसे :– मुखोपाध्याय से मुखर्जी, बन्धोपाध्याय से बनर्जी, चट्टोपाध्याय से चटर्जी इत्यादि। कभी–कभी ध्वनियों के परिणाम को बढ़ा भी दिया जाता है।जैसे :– बड़ी भाभी, बड़ी वाली भाभी, छोटे टेबल के स्थान पर छोटे वाला टेबल इत्यादि। कौन–सी ध्वनि उच्चारण में सरल है और कौन–सी कठिन यह कहना सहज नहीं है, प्रायः विदेशी ध्वनियों का उच्चारण हमारे लिए कठिन हैं। और हमारी ध्वनियां विदेशी के लिए कठिन हैं। यहीं नहीं कई बार स्वदेशी ध्वनियां भी कुछ प्रान्त या वर्ग के लोगों के लिए कठिन हो जाती हैं। जैसे :– हिंदी की संयुक्त ध्वनियां पंजाबी लोग नहीं बोल पाते। इस स्वनिक, परिवर्तन या ध्वनि विकास की निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. बहुत मंद गति से स्वनिक परिवर्तन से होता है और वह सामान्यतः बहुत देर में लक्षित होता है, कई सौ वर्ष बीत जाने के बाद ध्वनि परिवर्तन स्पष्ट होता है, जैसे – संस्कृत के अग्नि शब्द को हिन्दी का आग शब्द बनाने में हजारों वर्ष लगे। संस्कृत का अग्नि शब्द पाली में अग्गी इसके प्राकृत में अग्गि, इसके बाद अपभ्रंश में आकर यही शब्द आगि और हिन्दी में आकर यह शब्द आग बना। यही नहीं यह शब्द संस्कृत में पुल्लिंग है लेकिन हिन्दी में स्त्रीलिंग है।

2. ध्वनि का विकास अनजाने में धीरे–धीरे तो होता ही है वह समस्त जन समुदाय में व्यापक रूप से होता है। एक ही भाषा बोलने वाले कुछ व्यक्तियों या परिवारों में ही ध्वनि परिवर्तन नहीं

होता, बल्कि पूरे समाज में एक जैसा परिवर्तन होता है। जैसे – अक्खी से आंख। अपवाद रूप में कभी–कभी ध्वनि विकास में विभिन्नता नहीं दिखाई देती है। जैसे :– महाराष्ट्री प्राकृत में दो स्वरों के बीच में आने वाले त् ध्वनि का लोप हो जाता है। जैसे :– संस्कृत की गच्छति का उच्चारण वहां गच्छइ हो गया है, लेकिन शौरसेनी प्राकृत में त को द हो जाता है जैसे :– गच्छति को गच्छदि। इससे सिद्ध होता है कि अलग–अलग प्रदेश में रहने वाले लोगों में ध्वनि विकास की गति अलग–अलग होती है, जैसे :– महाराष्ट्री में परिवर्तन की गति तेज थी और शौरसेनी में अपेक्षाकृत मंद थी।

3. ध्वनि के विकास में वाक्य और शब्द के अंतर्गत ध्वनि परिस्थिति भी कारण होती है। किसी भी शब्द में ध्वनि आदि, मध्य या अंत में होती है इसके अतिरिक्त उस ध्वनि के आगे या पीछे कुछ समान और असमान ध्वनियां होती है। कुछ स्वर या व्यंजन होती है। कुछ अनुनासिक अथवा अनुनासिक ध्वनियां होती है। ये सारी ध्वनियां उसे प्रभावित कर सकती है। जिस प्रकार संस्कृत में स ध्वनि प्राकृत भाषा में कभी ह बन जाती है और कभी स ही बनी रहती है और कभी छ बन जाती है,, जैसे –संस्कृत में स्नान शब्द प्राकृत में नहाण बन गया। इसी तरह संस्कृत का सप्त शब्द प्राकृत में सत्त और इसी हिन्दी में सात बन गया। ध्वनियों का परिवर्तन ध्वनियों की परिस्थिति पर तो निर्भर है ही, लोकमानस की मनोवैज्ञानिकता पर भी निर्भर है।

4. ध्वनि का विकास एक निश्चित दिशा में होता है:–

पहले बोलने वाले वालों के उच्चारण के द्वारा ध्वनि विकास की जो ध्वनि निश्चित कर दी जाती है उसी दिशा में वह विकास आगे बढ़ता है। उदाहरण के लिए श, ष, स। महर्षि पाणिनि के समय सारे उत्तर भारत में ष का उच्चारण मूर्धा से होता था। इसी तरह ट का उच्चारण मूर्धा से होता था। लेकिन मूर्धन्य ष का उच्चारण तालव्य से होने लगा है, लेकिन ट का उच्चारण दंत से उपर वर्त्स से होने लगा है, इसी विकास की प्रवृत्ति को देखते हुए विभिन्न भाषाओं में ध्वनि विकास संबंधी नियम निर्धारित किए गए हैं जो उन भाषाओं में बहुत प्रभावात्मक कार्य करते हैं यदि कहीं उनमें अंतर दिखाई पड़ता है तो यह देश और काल की भिन्नता के कारण होता है। हिन्दी में यशोदा को जसोदा कहना, कृष्ण को किशन कहना इसी ध्वनि विकास

का परिणाम है, ध्वनि विकास के नियम अटल नहीं होते, लेकिन उनके माध्यम से भाषा के विकास को समझते हैं और वर्तमान भाषाओं का अध्ययन करते समय उनके पहले वाले रूपों का भी अध्ययन करते हैं।

2.2.6 स्वनिम विज्ञान का स्वरूप :–

स्वनिम सिद्धांत आधुनिक भाषा वैज्ञानिक पद्धति का अपरिहार्य अंग बन गया है। स्वनिम को प्राचीन भाषा वैज्ञानिक ध्वनिम अथवा ध्वनि ग्राम कहते थे। लेकिन अमेरिकी भाषा वैज्ञानिकों ने इसे अंग्रेजी में फोनिम (phoneme) का दिया, स्वनिम शब्द इसी का नवीन हिन्दी रूपान्तर है जो सार्थकता की दृष्टि से और ध्वनि साम्य की दृष्टि से ध्वनि ग्राम की अपेक्षा अधिक ग्राह्य है। स्वनिम शब्द संस्कृत की स्वन धातु से बना है या निस्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है ध्वनि करना या आवाज करना।

व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से स्वनिम विज्ञान अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके आधार पर हम किसी भाषा विशेष के अनेकानेक स्वरों में से कुछ प्रतिनिधि स्वर समूह को छांट लेते हैं, और उनके लिए लिपि चिन्हों या लेखिनों का निर्माण करते हैं। वैज्ञानिक लिपि में स्वनिम चिन्हित किए जाते हैं, स्वन नहीं, स्वन केवल उच्चरित होते हैं।

किसी भी भाषा में कोई ध्वनि किसी दूसरी ध्वनि के बिल्कुल समान नहीं होती, उच्चारण स्थान और प्रयत्न की दृष्टि से समान कहलाने वाली ध्वनियों में भी थोड़ा बहुत अंतर अवश्य रहता है ऐसी अवस्था में यह आावश्यक है कि समान ध्वनियों के वर्ण बनाए जाये तो उन सारी समान बानियों का प्रतिनिधित्व कर सके, और उन समान ध्वनियों में से किसी ध्वनि का लिपि चिन्ह बन सके, उदाहरण के रूप में जैसे :– काम, किसी, कल आदि शब्दों के आरंभ में आने वाली क ध्वनियां विकल्प, विकास, सुकेशी आदि शब्दों के बीच में आने वाली क ध्वनियां और वार्षिक वराक, व्यापक, निवेशक आदि शब्दों के अंत में आई हुई क ध्वनियां उच्चारण काल, उच्चारण भेद और उच्चारण स्थान आदि की दृष्टि से एक–दूसरी से भिन्न होने पर भी आपस

में समानता रखती है और इन सभी के लिए क लिपि चिन्ह प्रयोग किया जाता है,यही संस्वन है।

ध्वनि विज्ञानके दो प्रमुख पक्ष है।

1. औच्चारणिक 2. ध्वानिक

वाग्यंत्र से ध्वनियों की उत्पत्ति कैसे होती है, इसका अध्ययन औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान का विषय है, लेकिन ध्वनि की उपयोगिता उसके सुनने से है, जब तक कोई श्रोता न हो तब तक ध्वनि की कोई उपयोगिता नहीं होती।

औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान में स्थान करण, प्रयत्न की सहायता से ध्वनियों की उत्पत्ति पर विचार किया जाता है।

ध्वानिक विज्ञान में ध्वनियों का संवहन उसकी तारता, तीव्रता और आवृत्ति आदि का अध्ययन किया जाता है। औच्चारणीक ध्वनि विज्ञान का आधार शरीर विज्ञान है और ध्वानिक ध्वनि विज्ञान का आधार भौतिक विज्ञान है।

मनुष्य के वाग्यंत्र में अनन्त ध्वनियों के उत्पादन की क्षमता विद्यमान है किंतु वह सब का प्रयोग नहीं करता। यदि वह सब का प्रयोग करे तो अनन्त ध्वनियां हो जाएगी और उनके लिए अनंत ध्वनि चिन्ह प्रतिष्ठित करने पड़ेगे। इस प्रकार भाषा अध्ययन अव्यवस्थित हो जाएगा। इसलिए भाषा वैज्ञानिकों ने किसी भी भाषा की मूलभूत ध्वनियों के संख्या कम से कम 15 और अधिक से अधिक 50 निश्चित की है। भाषा की इन्हीं मूलभूत ध्वनियों का विश्लेषण और निर्धारित स्वनिम विज्ञान या स्वन सिद्धांत का उद्देश्य या लक्ष्य है।

2.2.7 स्वनिम की अवधारण :–

विभिन्न विद्वानों ने स्वनिम के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसे इस प्रकार परिभाषित किया है।

1. ब्लूम फील्ड :— स्वनिम व्यवच्छेदक (एक स्वरूप में भिन्नता प्रकट करना) ध्वन स्वरूप एक लघुतम इकाई है।

2. एच.ए. ग्लीसन :— स्वनिम ध्वनयात्मक दृष्टि से किसी भाषा अथवा बोली में समान स्वनों का समूह है जिसके वितरण का एक ढांचा होता है।

3. हैरिसन :— स्वनिम किसी भाषा की उच्चारण प्रक्रिया में सबसे छोटी इकाई है। जिसका प्रयोग अर्थ भिन्नता के लिए किया जा सकता है जैसे :— पल और फल।

4. बाबूराम सक्सेना :— स्वनिम ऐसी मिलती—जुलती ध्वनियों के समूह को कहते हैं जो एक—दूसरे से शब्दार्थ भेदकारी वैषम्य प्रदर्शित न करे।

5. डॉ. उदयनारायण तिवारी :— भाषा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने वाली न्यूनतम इकाई, किसी भाषा की ध्वनि न होकर उसे ध्वनि ग्राम ही होते हैं।

इन परिभाषाओं के आधार पर हम स्वनिम के निम्नलिखित तथ्यों से अवगत होते हैं।

1. प्रत्येक भाषा में प्रत्येक ध्वनि या ध्वनि तथ्यों के अनेक प्रकार हैं।

2. सभी ध्वनियों या ध्वनि तत्वों की गणना करना संभव नहीं है, और न ही उनके अलग—अलग ध्वनि संकेत बनाए जा सकते हैं।

3. ध्वनियों के वर्गीकृत समूह या स्वनिम भाषा की लघुतम इकाई होगी।

4. स्वनिम ही जब लिपि चिन्हों के रूप में ग्रहण किए जाते हैं तो इन्हें लेखिम कहा जाता है।

वास्तव में स्वनिम ऐसी मिलती—जुलती ध्वनियों को कहते हैं जो एक—दूसरे से शब्दार्थ—भेदकारी वैषम्य प्रदर्शित न करें। इसका अभिप्राय यह है कि यदि किसी एक ध्वनि के स्थान पर दूसरी ध्वनि को रख दिया जाए तो अर्थ में भेद उपस्थित हो जाए, जैसे :— फल और पल में फ और प का परस्पर शब्दार्थ भेदकारी वैषम्य है, इसीलिए इन दोनों को भिन्न—भिन्न स्वनिमों में रखा जाएगा।

इसी तरह शर्व व सर्व और सकल तथा शक्ल शब्दों में स और श ध्वनियां दो विभिन्न स्वनिमों के अंर्न्तगत गिने जाएंगे।

प्रायः ऐसा भी होता है कि किसी एक भाषा के स्वनिम दूसरी भाषा में भी उपलब्ध होते हैं, यह बात अलग है कि उनके लिए चिन्ह अलग होंगे जो कि उस भाषा–भाषी समाज में अपनी सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार होंगे।

2.2.8 स्वनिमों के भेद :–

1.खण्डात्मक स्वनिम 2. अखण्डात्मक स्वनिम

1. खण्डात्मक स्वनिम :– खण्डात्मक स्वनिम के होते हैं जिनका स्थान और प्रयत्न के आधार पर खण्ड–खण्ड करके विश्लेषण किया जाता है,

2. अखण्डात्मक स्वनिम :– ये स्वनिम वे होते हैं जो खण्डात्मक स्वनिमों से अलग होते हुए भी उनके बिना नहीं आ सकते। उदाहरण के लिए हम इ ई, उ, उ का ले सकते हैं। इसमें इ उ हस्व है तथा ई, उ दीर्घ स्वर है। इन दोनों में केवल मात्रा का अंतर है अर्थात् उच्चारण काल का अंतर है, जिहवा की स्थिति और उच्चारण स्थान में कोई अंतर नहीं है, इस मात्रा भेद के लिए अलग से न तो कोई प्रयत्न चाहिए और न ही खण्ड रूप। स्वनिम के अतिरिक्त कोई समय चाहिए। इसीलिए प्राचीन वैयाकरण पाणिनि ने इ, ई, उ, उ सभी को एक ही स्वनिम के अन्तर्गत रखा है, लेकिन उनके भेद को स्पष्ट करने के लिए मात्रा को एक अलग विवेचक गुण मान लिया है कि मात्रा ही है जो शब्दों के अर्थ में भेद कर सकती है, इस प्रकार अखण्डात्मक स्वरूप को खण्डात्मक स्वरूप स्वनिम का गुण माना जा सकता है, जैसे :– इ + ई = ई की स्वनिमों का गुण मान लिया जाता है।

खण्डरूप स्वनिम स्वर और व्यंजन दो भेदों में विभक्त किया गया है। लेकिन यह भेद अक्षर–रचना पर आधारित है।

स्वर के दो भेद हैं :– मूल स्वर और संधि स्वर।

मूल स्वर :– अ, इ, उ, ए

संधि स्वर :–आ, ई, उ, ए, ऐ, ओ, औ।

अखण्डरूप स्वनिम के दो भेद हैं –

1. अनुतान 2. विवृत्ति।

स्वनिमिक विश्लेषण :– हिन्दी की स्वानिमिक विश्लेषण प्रणाली अंग्रेजी के आधार पर इस प्रकार है –––

स्वरों की स्वानिमिक विश्लेषण प्रणाली :–

अ, आ, इ, ई, उ, उ, ए, ऐ, ओ, औ

व्यंजनों की स्वाभाविक विश्लेषण प्रणाली :–

प्	त्	ट्	च्	क्
फ्	थ्	ठ्	छ्	ख्
ब्	द्	ड्	ज्	ग्
भ्	ध्	ढ्	झ्	घ्
म्	स्	स्	श्	ह्
–	न्	ण	–	ड़्
–	र्	ळ्	–	–
–	ल्	–	–	–
–	व्	य्	–	–

इन दस स्वरों के अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने पांच अनुनासिक स्वर स्वीकृत किये हैं। अ, आ, ए, ऐ, औ। इस प्रकार 15 स्वर स्वीकार किए गए हैं और 32 (बत्तीस) व्यंजनों के स्थान 42 व्यंजन स्वीकार किये गए हैं। 32 के अतिरिक्त 10 व्यंजन इस प्रकार हैं :–

क़् ख़् ग़् ज़् फ़् म्ह् न्ह् ह् ढ़् ल्ह।

हिन्दी की यह स्वानिमिक प्रणाली आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों ने अंग्रेजी के अनुकरण पर प्रस्तुत की है। किन्तु वास्तव में हिन्दी की वर्णमाला संस्कृत के वर्णमाला के अनुकरण पर चलती है। और उच्चारण स्थान प्रयत्न आदि की दृष्टि से हिन्दी की वर्णमाला बनाई गई है। इसीलिए सबसे पहले अ और आ को लिया गया। व्यंजनों में क वर्ग को प्रथम स्थान दिया गया क्योंकि वांग्यंत्र में सबसे पहला उच्चारण स्थान कण्ठ हैं और ये स्वर और व्यंजन कण्ठ से ही बोले जाते हैं।

दूसरा उच्चारण स्थान तालु है। इसीलिए स्वरों में इ और ई को रखा गया और व्यंजनों में च वर्ग को स्थान दिया गया है। तीसरा उच्चारण स्थान मूर्धा है, इसीलिए स्वरों में ऋ और व्यंजनों में ट वर्ग को स्थान दिया गया। अगला उच्चारण स्थान दन्त है। इसीलिए स्वरों में ल और व्यंजनों में त वर्ग को स्थान दिया गया। अगला उच्चारण स्थान ओष्ठ हैं, इसलिए स्वरों में उ और व्यंजनों में प वर्ग को स्थान दिया गया। सनिध स्वरों में ए + ऐ को कण्ठय और तालव्य स्थानीय माना गया क्योंकि ये दोनों उच्चारण क्रमशः और समीपस्त भी है। ओ औ कण्ठ और ओष्ठ को स्थानीय माना गया क्योंकि इनमें अ उ है ये हिन्दी की स्वनिम विश्लेषण की पद्धति है।

क वर्ग का ड़ और च वर्ग का ळ ट वर्ग का ण। ये तीन ऐसे वर्ण हैं कि इनकी शुरूआत से हिन्दी में कोई शब्द भी शुरू नहीं होता। हिन्दी की स्वानिमिक व्यवस्था ऐसी है। र व्यंजन जब ये संयुक्त व्यंजन में मिलता है तो इसकी प्रमुख रूप से तीन स्थिति होती है–

1. उर्ध्वगमन – यह अपने आगे वाले वर्ण के उपर चला जाता है। जैसे–अर्ह,

2. अधोगमन – यह वर्ण के नीचे आ जाता है जैसे :– ह्रास

3. त्रिकोणात्मक स्वरूप की स्थिति :– इसमें र वर्ण के नीचे आ जाता है। जैसे :– राष्ट्र।

और इसी तरह हिन्दी हस्व का अभाव है जो कि हमारी हिन्दी की वैदिक ध्वनि में पाया जाता है, इसी तरह हस्व ओ का भी अभाव है, इ की मात्रा जिस ध्वनि पर लगती है उसके उच्चारण में मात्रा बाद में सुनाई पड़ती है और ध्वनि पहले। स्वानिमिक प्रणाली में ए और ऐ की मात्रा में भ्रम है।

2.3 सारांश :–

स्वनिम ज्ञान से भाषा के शुद्ध उच्चारण में सरलता होती है। स्वनिम के माध्यम से ही किसी भाषा की मूल ध्वनियो का ज्ञान होता है। इस प्रकार भाषा–शिक्षण में स्वनिम ज्ञान का विशेष महत्त्व है। स्वनिम के माध्यम से ही अन्तर्राष्ट्रीय लिपि निर्माण आदि में स्वनिम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती हैं।

2.4 संकेत शब्द :–

ध्वनि, अक्षर, वर्ण, शब्द, पद, पदबंध, स्वर, व्यंजन, वर्ण माला

2.5 स्वः मूल्यांकन हेतु प्रश्न :–

प्रश्न 1– ध्वनि विज्ञान की परिभाषा देते हुए, ध्वनि–विज्ञान के विभिन्न अध्ययन–क्षेत्र के नाम तथा अध्ययन के विषय को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2– स्वर और व्यंजन की परिभाषाएं देते हुए हिंदी की स्वर और व्यंजन–ध्वनियों की संख्या बताइए।

प्रश्न 3– ध्वनियों के वर्गीकरण के विभिन्न आधारों की चर्चा करते हुए बताइए कि इनमें से सर्वमान्य आधार कौन–सा है? और क्यो?

प्रश्न 4– हिन्दी की स्वर– ध्वनियां कितनी है? उनके वर्गीकरण के विभिन्न आधारों की चर्चा–कीजिए।

प्रश्न 5– निम्न पर टिप्पणी करे।

क– पद और पदबंद का अंतर स्पष्ट करे।

ख – शब्द और अर्थ का संबंध स्पष्ट करे।

2.6 संदर्भ सामग्री :–

1. भाषा और भषिकी, देवीशंकर द्विवेदी, राधाकृष्ण, दिल्ली, 1993
2. भाषा विज्ञान की भूमिका, देवेन्द्रनाथ शर्मा, राधाकृष्ण, 1989
3. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, किताब महल इलाहाबाद, 1997
4. मानक हिन्दी का संरचनात्मक भाषा विज्ञान, ओमप्रकाश भारद्वाज, आर्यबुक डिपो, दिल्ली
5. भाषाविज्ञान और मानक हिन्दी, नरेश मिश्र, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1993
6. आधुनिक भाषाविज्ञान, कृपाशंकर सिंह एवं चतुर्भुज सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1997
7. आधुनिक भाषाविज्ञान, राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1996
8. भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र, कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1997
9. हिन्दी भाषा : उद्गम और विकास, उदयनारायण तिवारी, भारती भंडार, इलाहाबाद, 1961
10. हिन्दी भाषा : भोलानाथ तिवारी, किताब महल, दिल्ली, 1991
11. हिन्दी : उद्भव और विकास, हरदेव बाहरी, किताब महल, इलाहाबाद, 1965
12. हिन्दी भाषा का विकास, देवेन्द्रनाथ शर्मा एवं रामदेव त्रिपाठी, राधाकृष्ण, दिल्ली, 1971
13. हिन्दी भाषा : रूप विचार, सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण', चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1962
14. देवनावरी देवीशंकर द्विवेदी, प्रशांत प्रकाशन, कुरुक्षेत्र 1990
15. देवनागरी लेखन तथा हिन्दी वर्तनी, लक्ष्मीनारायण शर्मा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 1976

16. भाषाविज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा, द्वारिका प्रसाद सक्सेना, मीनाक्षी प्रकाशन दिल्ली, 1976
17. भाषा शिक्षण, रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, सहकारी प्रकाशन, दिल्ली, 1981
18. भाषा और भाषाविज्ञान, नरेश मिश्र, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2001
19. आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धान्त, रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998
20. अनुवाद विज्ञान, राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002
21. अनुवाद विज्ञान और सम्प्रेषण, हरिमोहन, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1984
22. अनुवाद विज्ञान और आलोचना की नयी भूमिका, रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 1980

हिंदी विज्ञान और हिंदी भाषा	
एम. ए. हिंदी	कोर्स कोड़ : एम. ए. – 101
समग्री संकलन एवं लेखन – डॉ. राजपाल सहायक प्रो0 हिंदी	विश्लेषक –
खंड–ग	अध्याय – 3

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 विषय प्रस्तुति

3.3 सारांश

3.4 संकेत शब्द

3.5 स्वः मूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.6 संदर्भ सामग्री

3.0 उद्देश्य

आप गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय विज्ञान और प्रौद्योगिकी हिसार के दूरस्थ शिखा निदेशलय द्वारा संचालित पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष के प्रथम प्रश्न पत्र भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा की संरचना से संबंधित पाठ्यक्रम की इकाइयों का अध्ययन करने जा रहे है। प्रथम खंड ख में रूप विज्ञान से संबंधित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- रूप की संकल्पना से परिचित हो सकेंगे।
- रूपविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी के शब्दसाधक तथा रूपसाधक उपसर्ग प्रत्ययों को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

हिंदी भाषा संरचना के स्तर के अध्ययन से संबंधित इस इकाई के अंतर्गत आप हिंदी भाषा के रूप वैज्ञानिक स्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई के अध्ययनप से आपकों हिन्दी भाषा के रूपविज्ञानिक विश्लेषण से संबंधित सारी जानकारी प्राप्त होंगी। शब्द भाषा की स्वतंत्र एवं सार्थक इकाई होता है। एक या एक से अधिक ध्वनियों को एक निश्चित क्रम में रखने से शब्द बनते है। शब्दों से वाक्य बनाया जाता है। वाक्यों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों और कोश में दिए गए शब्दों में अंतर रहता हैं। वाक्य में प्रयुक्त शब्द में कुछ ऐसा तत्व होता है जिसके आधार पर वह वाक्य के अन्य शब्दों के साथ अपना संबंध स्थापित कर सकता हैं । संबंधतत्वव से युक्त, वाक्यों में प्रयोग करने योग्य शब्द रूप को शब्द कहते है। 'रूप' या 'पद' भाषा–विज्ञान की एक नई संकल्पना है। इस तरह के उलझनों को स्पष्ट करने के लिए भाषा–विज्ञान रूप की नवीन संकल्पना को सामने लाई है।

3.2 विषय प्रस्तुति :–

3.2.1 रूप प्रक्रिया का स्वरूप और उसकी शाखाएं :–

भाषा विज्ञान की रूप प्रक्रिया में शब्द रूपों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है, शब्दों की संरचना, वाक्य में शब्दों का प्रयोग, शब्द और पद, संबंध तत्व और अर्थतत्व, प्रकति और प्रत्यय तथा वैयाकरणीक, कोटियां आदि रूप विज्ञान का विषय हैं (छात्र और उसके रूप में अंतर है कि छात्र एक प्रकृति है और जब यह अनेक भागों में बंट जाता है तो यह उसका रूप बन जाता है, जब रूप वाक्य में आते हैं तो पद बन जाते हैं) संबंध तत्व जिनमें विभक्तियों के चिन्ह जुड़ते हैं। जैसे :– छात्र ने में छात्र अर्थतत्व और ने संबंध तत्व है।

संसार की प्रत्येक भाषा में मनुष्य के जो विचार प्रकट है, उसे वाक्यों में विभक्त किया जाता है, वाक्यों की रचना पदों से होती है ये पद मूल से शब्द होते हैं, और जब इसमें प्रत्यय जुड़ जाते हैं तो इन्हीं को रूप कहते हैं, वाक्य में इन रूपों को प्रयुक्त करने के लिए पदक्रम और अन्विति का ध्यान रखा जाता है, कोई भी शब्द कारकीय विभक्तियों से जुड़ जाने पर रूप बन जाता है और पदक्रम अन्विति आदि की दृष्टि से जब अर्थबोध और भावबोध की क्षमता प्राप्त कर लेता है तब पद बन जाता है।

वास्तव में रूप भाषा की अर्थपूर्ण लघुतम इकाई होती है जिसमें एक अथवा अनेक ध्वनियां हो सकती हैं। उदाहरण :– न एक ध्वनि रूप है, सार्थक ध्वनियों के समूह को ही रूप कहते हैं जो किसी अर्थ विशेष को व्यक्त करते हैं,

रूप विज्ञान की शाखाएं :– रूप विज्ञान को हम प्रमुख रूप से शब्द रूप और पद विज्ञान इन तीन शाखाओं में विभक्त कर सकते हैं। शब्द विज्ञान के अंतर्गत हम सार्थक ध्वनियों के समूह से शब्द की संरचना करते हैं। इसके लिए हमें वक्ता की अभिव्यक्ति के अनुसार शब्द रचना करनी होती है।

<u>रूप विज्ञान की शाखाएं :–</u>

इस विज्ञान की शाखा के अन्तर्गत शब्द सरंचना और शब्द के प्रयोग को लेकर विशिष्ट अध्ययन किया जाता है। इस विज्ञान की दूसरी शाखा पद विज्ञान है, इसमें शब्द और पद में अंतर पदों का स्वरूप, इनकी विशेषताएं रूपायन और और व्युत्पादन आदि पर विचार किया

जाता है। इस विज्ञान के अंतर्गत भेद–प्रभेद प्रत्यय और प्रकृति आदि पर विचार किया जाता है, विशेष रूप से अर्थदर्शी और संबंध दर्शी रूपियों का विश्लेषण किया जाता है।

रूप विज्ञान के अन्तर्गत ही एक उपशाखा में व्याकरणीक कुटियों अर्थात् लिंग, वचन, पुरूष, कारक, काल, वाच्य, प्रेरणार्थक क्रिया नाम धातु क्रिया और समस्त पद का अध्ययन किया जाता है।

3.2.2 रूपिम की अवधारणा व उसके भेद :–

व्याकरण और भाषा विज्ञान दोनों के अनुसार ध्वनियों के सार्थक समूह को शब्द कहा गया है, यही शब्द विभिन्न कारकीय स्थिति में रूप कहा जाता है और यही शब्द रूप अर्थबोध और भावबोध की क्षमता प्राप्त कर लेने पर पद बन जाता है। उदाहरण के लिए ––––रा, म, रा, व, ण। ये शब्द का खण्ड हैं जिनका कोई अर्थ नहीं है। परन्तु जब इकट्ठे हो जाते हैं तब इनका अर्थ सार्थक होता है और इन्हें शब्द या रूप कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि राम, रावण आदि शब्द भी है और सार्थक रूप भी है और जब इनमें ने, को से आदि प्रत्यय जोड़ देते हैं तो ये अर्थबोध और भावबोध की क्षमता प्राप्त करके वाक्य में प्रयुक्त होने योग्य पद बन जाते हैं, ये पद एक ओर तो वाक्य को सार्थक बना रहे हैं। दूसरी ओर ये रूपात्मक भी हैं। इसीलिए हम कह सकते हैं कि वाक्य की वह सार्थक लघुतम इकाई रूपिम कहलाती है जिसका संबंध भाषा के रूढ़ पक्ष से रहता है और अर्थ पक्ष से भी। कुछ भाषा वैज्ञानिक रूपग्राम और पदग्राम भी कहते हैं।

कुछ विद्वानों की रूपिम संबंधी परिभाषाएं इस प्रकार हैं :–

पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएं :–

1. ब्लूम फील्ड :– रूपिम एक भाषित रूप है जिसमें किसी अन्य रूप से ध्वन्यात्मक एवं अर्थगत सादृश्य नहीं होता।

2. हॉकेट :– किसी भाषा के उच्चार में रूपिम न्यूनतम स्वतः अर्थवान तत्व होते हैं।

3. ग्लीसन :– रूपिम न्यूनतम उपयुक्त व्याकरणीक अर्थवान रूप है।

भारतीय विद्वानों की परिभाषाएं :–

1. डॉ. उदयनारायण तिवारी :– पदग्राम (रूपिम) वस्तुतः परिपूरक वितरण या मुक्त वितरण में आए हुए सहपदों का समूह है।

2. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना :– वाक्य की सार्थक लघुतम इकाई को रूपग्राम कहते हैं।

3. डॉ. भोलानाथ तिवारी :– भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई रूपग्राम है।

रूपिम के भेद :–

रूपिम को चार आधारों पर विभक्त किया जाता है।

1. रचना के आधार पर :– इस आधार पर रूपग्राम दो प्रकार के होते हैं।

1. संयुक्त रूपिम :– दो या दो से अधिक ऐसे रूपग्रामों से इनकी रचना होती है जिनमें से एक अर्थतत्व होता है और शेष सभी संबंध तत्व होते हैं जैसे :–

तुम्हारे नगरों की सफाई होगी – इसमें चार

संयुक्त रूप ग्राम है, इन चारों में तुम, नगर, साफ और होना ये अर्थतत्व है।

तुम्हारे = तुम्ह + आ + रे, नगरों = नगर + ओ,

सफाई = साफ + आई, होगी = होना + गी,

इस प्रकार अर्थतत्व और संबंध तत्व मिलकर संयुक्त रूपग्राम बनते हैं,

2. मिश्रित रूपग्राम :– जिन रूपिमों की रचना दो या दो से अधिक अर्थतत्वों से होती है, उन्हें मिश्रित रूपग्राम कहते हैं जैसे :– विद्यालय (विद्या+आलय)

नगरपालिका (नगर + पालिका) जलसेनापति (जल +सेना + पति)

(2) अर्थतत्व और संबंध तत्व के आधार पर :–

इस आधार पर इसके दो भेद हैं,

1. अर्थ तत्व प्रतिपादक रूपिम :– प्रत्येक भाषा में अर्थतत्व के प्रतिपादक रूपिमों की संख्या बहुत अधिक होती है। इन्हें संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि के रूप में व्याकरण की दृष्टि से गिना जा सकता है, जैसे :– संज्ञा (स्थान, व्यक्ति, आदि का बोध), क्रिया (करण, खेलना) विशेषकर मापना, गुण–विशेष आदि।

2. संबंध तत्व प्रतिपादक रूपग्राम :–जो रूपिम वाक्य में केवल संबंध तत्वों का प्रतिपादन करते हैं उन्हें संबंध तत्व प्रतिपादक रूपग्राम कहते हैं। इन्हीं को दूसरे शब्दों संबंधदर्शी रूपिम भी कहते हैं।

संबंध तत्व प्रतिपादक रूपिम के भेद :–

1. सुवन्त विभक्ति :– संस्कृत में प्रथमा से लेकर सप्तमी विभक्ति तक होती है और प्रथम को ही संबोधन के रूप में ग्रहण किया जाता है। हर विभक्ति में एकवचन, द्विवचन और बहुवचन के प्रत्यय होते हैं। जैसे – प्रथम, मे सु, औ, जस् आदि इक्कीस विभक्तियां होती हैं जिन्हें सुवंत विभक्ति कहते हैं। सुवन्त विभक्तियों से युक्त पद को सुवन्त पद कहते हैं।

2. तिडन्त या तिडन्त प्रत्यय :– संस्कृत में कियापद बनाने के लिए जो प्रत्यय लगते हैं, उन्हें तिडन्त प्रत्यय कहते हैं। संस्कृत में परस्मैपदी और आत्मपदी दो प्रकार की कियाएं होती हैं, परस्मैपदी किया बनाने के लिए तिय, तस, झि आदि नौ प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। आत्मनेपदी किया बनाने के लिए त, आताम्, झ आदि नौ प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं।

3. कृदन्त प्रत्यय :– ये प्रत्यय संस्कृत में धातुओं के साथ जुड़ते हैं। जैसे :– पठ् + कत्वा = पठित्वा,

पठ् + वुमुन = पठितुम। ये प्रत्यय वुमुन्, कत्वा, क्त, घंळ, वुल, आदि होते हैं।

4. तद्धित प्रत्तय :– तद्धित प्रत्यय शब्दों से जुड़ते हैं और ये अण्, यत्, व्यत्, यळ आदि होते हैं।

5. स्त्री प्रत्यय :– पुल्लिंग शब्दों की स्त्रीलिंग बनाने के लिए इन प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है तथा ये प्रत्यय डीप्, डीस, टाप, चाप, उड़् आदि रूपों में होते हैं।

हिन्दी में कारक विभक्तियों के चिन्ह के रूप में कर्त्ताकारक में ने कर्म कारक में को करण कारक में से अथवा के द्वारा सम्प्रदान कारक में के लिए और उपादान कारक में से (अलग होने के रूप में) तथा संबंध कारक में का, के, रा, रे, री अधिकरण कारक में में पर, विषय में आदि रूपों में होते हैं। इसी तरह हिन्दी में कुछ देशी प्रत्यय है जो संबंध तत्व यादर्शी रूपिम कहे जाते हैं। जैसे :– आका + लड़ाई = लड़ाका

आड़ी + खेल = खिलाड़ी, आला + रख = रखवाला इत्यादि। कुछ विदेशी प्रत्यय भी है जो संबंधदर्शी रूपिम का काम करते हैं जैसे :– अरबी, फारसी में दान, खोर, बाजी, बाज अंग्रेजी के भी प्रत्यय संबंध दर्शी रूपिम का कार्य करते हैं जैसे :– dom (kingdom), Hood (childhood) इत्यादि। ये सभी संबंध तत्वदर्शी रूपग्राम है।

3. प्रयोग के आधार पर रूपिम के भेद तीन होते हैं :–

1. मुक्त :– जो रूपिम स्वतंत्र रूप से वाक्य में प्रयुक्त होते हैं या हो सकते हैं उन्हें मुक्त रूपग्राम कहते हैं। जैसे :– मोहन विद्यालय में पुस्तक पढ़ता है। इसमें मोहन और पुस्तक दोनों मुक्त है। क्योंकि वाक्य में इन्हें प्रयोग करने के लिए किसी ओर रूपग्राम की सहायता नहीं लेनी पड़ती।

2. बद्धरूपिम :— जो रूपग्राम या रूपिम किसी न किसी शब्द के साथ जुड़कर ही वाक्य में प्रयुक्त होते हैं उन्हें बद्धरूपिम कहते हैं। जैसे :— लड़के कमरे में पुस्तकें पढ़ते हैं। इस वाक्य में लड़के कमरे और पुस्तकें तीनों बद्ध रूपिम है क्योंकि इनके प्रयोग के लिए क्रमशः ऐ, ऐ, ए की सहायता ली गई है।

3. मुक्त बद्ध रूपिम :— जो रूपिम देखने में स्वतंत्र और मुक्त होते हैं लेकिन वाक्य में किसी न किसी शब्द के साथ जुड़कर ही प्रयुक्त होते हैं। उन्हें मुक्त बद्ध रूपिम कहते हैं। जैसे :— हिन्दी में कारकीय विभक्तियों के परसर्ग ने, को, से इत्यादि।

4. खण्डीकरण के आधार पर रूपिम के दो भेद होते हैं—

1. खण्डात्मक रूपिम :— जिन रूपिमों को हम खण्डों में विभक्त कर सकते हैं उन्हें खण्डात्मक रूपिम कहते हैं। जैसे :— लड़कों = लड़का + ओ, पाठशाला = पाठ + शाला

2. अखण्डात्मक रूपिम :— जिन रूपिमों के खण्ड न किए जा सके उन्हें अखण्डात्मक रूपिम कहते हैं। भाषा में बलाघात, सुर, लहर, आदि ध्वनि गुण अखण्डात्मक रूपिम कहे जाते हैं।

यदि शब्द के बिना अर्थ का कोई महत्व नहीं है क्योंकि शब्द के बिना अर्थ अग्राह, अव्यक्त ओर होता है, और अर्थ के बिना शब्द एक निरर्थक ईकाई है। इसलिए अर्थ को बताने अर्थात् व्यक्त करने के लिए एक व्यक्त वाणी की आवश्यकता है जिसकी पूर्णता शब्द के माध्यम से होती है। इसलिए शब्द के द्वारा ही हम अर्थ का बोध ग्रहण कर सकते हैं और अर्थ को व्यक्त करने के लिए शब्द का होना अनिवार्य है जिस प्रकार सागर के अंदर बूंदों का समागम होता है। उसी प्रकार वाक्यों में पदों का होना आवश्यक है।

3.3 सारांश :–

रूप–विज्ञान रूप के अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली है। इसके अंतर्गत मूल शब्द या शब्द के शुद्ध रूप को वाक्य में प्रयोग करने योग्य रूपम` किस प्रकार परिवर्तित किया जाता है– इसका अध्ययन होता है। जब शब्द के मूल रूप के साथ कुछ संबंधतत्व जोड़ दिए जाते जाते है, तब शब्द 'रूप' में परिवर्तित हो जाते हें विभिन्न प्रकार के संबंध तत्वों का अध्ययन, रूप विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र बनता है। संबंधतत्व भाषा की वह इकाई है जो मूल शब्द में पहले से विद्यमान अर्थ को प्रकाशित कर देती है। संबंधतत्व के अंतर्गत प्रत्यय, परसर्ग, उपसर्ग आदि पर विचार किया जाता है।

3.4 संकेत शब्द :–

उच्चारण, अर्थ, शब्द, वाक्य, रचना, रूप

3.5 स्वः मूल्यांकन हेतु प्रश्न :–

प्रश्न 1– रूप की परिभाषा देते हुए, भाषा–विज्ञान की इस नई संकल्पना को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 2– 'रूप–विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र'– से क्या तात्पर्य है?

प्रश्न 3– हिंदी में नए शब्दों के निर्माण की प्रक्रिया में रूप–साधक तत्व की क्या भूमिका होती है? उचित उदाहरण के साथ समझाइए।

प्रश्न 4– रूप और वाक्य रचना से क्या अभिप्रायः है?

प्रश्न 5– निम्न पर टिप्पणी करे।

क– अन्वव और पदक्रम में अंतर स्पष्ट करे।

ख – शब्द कोश में दिए–गए शब्द तथा वाक्य में प्रयुक्त शब्दों में क्या अंतर है?

3.6 संदर्भ सामग्री :–

1. भाषा और भषिकी, देवीशंकर द्विवेदी, राधाकृष्ण, दिल्ली, 1993
2. भाषा विज्ञान की भूमिका, देवेन्द्रनाथ शर्मा, राधाकृष्ण, 1989
3. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, किताब महल इलाहाबाद, 1997
4. मानक हिन्दी का संरचनात्मक भाषा विज्ञान, ओमप्रकाश भारद्वाज, आर्यबुक डिपो, दिल्ली
5. भाषाविज्ञान और मानक हिन्दी, नरेश मिश्र, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1993
6. आधुनिक भाषाविज्ञान, कृपाशंकर सिंह एवं चतुर्भुज सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1997
7. आधुनिक भाषाविज्ञान, राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1996
8. भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र, कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1997
9. हिन्दी भाषा : उद्‌गम और विकास, उदयनारायण तिवारी, भारती भंडार, इलाहाबाद, 1961
10. हिन्दी भाषा : भोलानाथ तिवारी, किताब महल, दिल्ली, 1991
11. हिन्दी : उद्‌भव और विकास, हरदेव बाहरी, किताब महल, इलाहाबाद, 1965
12. हिन्दी भाषा का विकास, देवेन्द्रनाथ शर्मा एवं रामदेव त्रिपाठी, राधाकृष्ण, दिल्ली, 1971
13. हिन्दी भाषा : रूप विचार, सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण', चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1962
14. देवनावरी देवीशंकर द्विवेदी, प्रशांत प्रकाशन, कुरुक्षेत्र 1990
15. देवनागरी लेखन तथा हिन्दी वर्तनी, लक्ष्मीनारायण शर्मा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 1976
16. भाषाविज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा, द्वारिका प्रसाद सवसेना, मीनाक्षी प्रकाशन दिल्ली, 1976
17. भाषा शिक्षण, रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, सहकारी प्रकाशन, दिल्ली, 1981
18. भाषा और भाषाविज्ञान, नरेश मिश्र, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2001
19. आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धान्त, रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998
20. अनुवाद विज्ञान, राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002
21. अनुवाद विज्ञान और सम्प्रेषण, हरिमोहन, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1984

22. अनुवाद विज्ञान और आलोचना की नयी भूमिका, रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 1980

हिंदी विज्ञान और हिंदी भाषा	
एम. ए. हिंदी	कोर्स कोड़ : एम. ए. – 101
समग्री संकलन एवं लेखन – डॉ. राजपाल सहायक प्रो0 हिंदी	विश्लेषक –
खंड–घ	अध्याय – 4

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 विषय प्रस्तुति

4.3 सारांश

4.4 संकेत शब्द

4.5 स्वः मूल्यांकन हेतु प्रश्न

4.6 संदर्भ सामग्री

4.0 उद्देश्य

आप गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय विज्ञान और प्रौद्योगिकी हिसार के दूरस्थ शिखा निदेशलय द्वारा संचालित पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष के प्रथम प्रश्न पत्र भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा की संरचना से संबंधित पाठ्यक्रम की इकाइयों का अध्ययन करने जा रहे है। प्रथम खंड ग वाक्य विज्ञान एवं अर्थ विज्ञान से संबंधित से है। भाषिक इकाइयों में वाक्य अधिक महत्वपूर्ण इकाई है जिसके माध्यम से विचारों का पूर्ण संप्रेषण संभव हो पाता है। हिंदी भाषा में जो वाक्य प्रयुक्त होते हैं वे विविध प्रकार के है। वाक्य विज्ञान की विश्लेषण प्रक्रिया के आधार पर हिंदी वाक्यों का विश्लेषण सोदाहरण प्रस्तुत करना। शब्द और अर्थ का परस्पर संबंध क्या है? इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- वाक्य की परिभाषा तथा वाक्य विज्ञान के अअययन की शाखाबों से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी वाक्यों के प्रमुख प्रकार सरलवाक्य, मिश्रितवाक्य तथा संयुक्त वाक्यों के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भाषा में शब्द और अर्थ का संबंध अर्थ की प्रतीति कैसे होती है, व कार्यक्षेत्र के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

भाषा संप्रेषण का सशक्त तथा अनिवार्य माध्यम है। भाषा की संप्रेषणीयता को साध्य बनानेवाली भाषिक इकाईयों में वाक्य अधिक महत्वपूर्ण ईकाई है। संप्रेषण का सामान्य अर्थ होता है– अपने मन के भावों और विचारों को दूसरों तक पहुचाना। संप्रेषण दो तरह से होता है मौखिक या लिखित। मौखिक (बात करने से) हो या लिखित (लिखने से) दोनों प्रकार का संप्रेषण वाक्यों क्षरा ही संभव होता है। कभी–कभी हम एक ही वाक्य में पूरे भाव को अभिव्यक्त कर देते हैं तो कभी–कभी एक से अधिक वाक्यों में। वाक्य में प्रयुक्त अलग–अलग शब्दों के अपने अर्थ होते हैं परंतु अलग–अलग शब्दों से पूरे भाव या विचार या संदेश का संप्रेषण संभव नहीं हो

पाता। अतः समझने–समझाने योग्य संप्रेषण के लिए कम–से–कम एक पूर्ण वाक्य की आवश्यकता होती है। शब्द और अर्थ का संबंध शरीर और आत्मा जैसे अद्वैत है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व अधूरा या अपरिपूर्ण है। जिस तरह शरीर के माध्यम से ही आत्मा का प्रत्यक्षीकरण होता है, उसी प्रकार मूर्त रूप में रहने वाले शब्दों के माध्यम से ही अमूर्त अर्थ का बोध होता है। किसी भी भाषा में अर्थ की व्याप्ति असीमित होती है। समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप, प्रत्येक भाषा में बननेवाले नए–नए शब्द, अर्थ की असीमित परिधि को सूचित करते है।

4.2 विषय प्रस्तुति :–

4.2.1 वाक्य की अवधारणा :–

भाषा की संरचना की दृष्टि से इसके दो पक्ष माने जाते हैं :– 1. अर्थपक्ष 2. अभिव्यक्ति पक्ष।

इसके अर्थपक्ष को अभिव्यक्ति के द्वारा ही अभिव्यक्त किया जाता है। इस अभिव्यक्ति के तीन स्तर है :– वाक्य, रूपिम और स्वनिम। वाक्य भाषा की सबसे छोटी इकाई है जो अर्थ अथवा विचार की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण होती है, व्याकरण के विद्वान ध्वनि को भाषा की सबसे छोटी इकाई मानते हैं, इन्हीं ध्वनि समूहों में जब सार्थकता आ जाती है और वह परस्पर अन्वय के योग्य बन जाता है तो उसे पद कहते हैं, पद–रचना में शारीरिक और मानसिक दोनों पक्ष काम करते हैं, भाषा का उच्चारण प्रश्न शारीरिक पक्ष के अन्तर्गत आता है और सार्थकता का प्रश्न मानसिक पक्ष के अर्न्तगत आता है। इस तरह वाक्य पूर्ण रूप से मानसिक या मनोवैज्ञानिक तत्व है।

वाक्य की परिभाषा :–

भारतीय आचार्यों की परिभाषाएं :–

1. महर्षि जैमिनि :– एकार्थक पदों के समूह को वाक्य कहते हैं। यदि वह विभाजन में साकांक्ष हो।

2. महर्षि पतंजलि :– जिसमें एक क्रिया हो, उसे वाक्य कहते हैं।

3. वात्स्यायन :– साकांक्ष पदों का समूह वाक्य होता है।

4. आचार्य जगदीश :– परस्पर साकांक्ष शब्दों का समूह होता है।

5. आचार्य विश्वनाथ :– वाक्याम् स्यात् योग्यता कांक्षा सत्तियुक्तः पदोच्चयः अर्थात योग्यता, आकांक्षा और आसति से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

6. अमर सिंह :– सुबन्त या तिड़न्त पदों के समूह को अथवा कारक युक्त पदों के समूह को वाक्य कहते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएं :–

1. अरस्तु :– वाक्य सार्थक ध्वनियों से बनता है जिनमें से कुछ भाव स्वतः कुछ अर्थ व्यक्त करते हैं क्योंकि प्रत्येक वाक्य संज्ञाओं और क्रियाओं से बनता है, परन्तु क्रिया के बिना भी वाक्य हो सकता है।

इन परिभाषाओं के अनुशीलन से निष्कर्ष निकलता है कि वास्तव में वाक्य ऐसा पद या पद समूह होता है जो अभिहित अर्थ का पूर्ण रूप से द्योतक होता है।

वाक्य और पद के आपेक्षिक महत्वः–

इस संबंध में दो सिद्धांत हैं जिन्हें अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद कहा जाता है। ये दोनों सिद्धांत मीमांसक विद्वानों के हैं, अभिहितान्वयवाद वाक्य में पद की सत्ता मानता है और अन्विताभिधानवाद वाक्य की सत्ता स्वीकार करता है।

4.2.2 **अभिहितान्वयवादी** :–

अभिहितान्वयवादी कहते हैं कि की वाक्य में पद की सत्ता है क्योंकि पदों को जोड़ने से वाक्य बनता है जिस प्रकार एक–एक व्यक्ति से समाज बनता है उसी प्रकार एक–एक पद से

वाक्य बनता है। प्रत्येक पद अपने अर्थ के साथ अपने सहसंबंधी पद के साथ अन्वित हो जाता है। तब वाक्य सार्थक बन जाता है। इसीलिए वाक्य में पदों का महत्व है।

अन्विताभिधानवाद के अनुसार भाषा के वाक्य सबसे छोटी इकाई माना जाता है और वाक्य ही एक पूरे विचार को व्यक्त करने में सक्षम होते हैं। इसलिए वाक्य महत्वपूर्ण है क्योंकि उसमें पदों की पूर्ण अन्विति के बाद ही एक पूरा अर्थ वाक्य के रूप में प्रकट होता है। इसलिए भाषा में वाक्य की सत्ता है, पद की पृथक सत्ता ही नहीं है। आधुनिक भाषा विज्ञान इसी सिद्धांत का समर्थक है। क्योंकि भाषा की लघुतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य ही है। भर्तृहरि ने अपने वाक्यमदीय ग्रन्थ में इसी अन्विताभिधानवाद का समर्थन करते हुए लिखा है कि——————

पदे न वर्णाः विधन्ते, वणेस्वयवा न च

वाक्यात् पदानाम अत्यन्तम् प्रविवेकी न कश्चन।

जिस प्रकार वर्णों में अवयव नहीं होते उसी प्रकार पदों में वर्ण या वाक्य में पद नहीं होते, कहने का अभिप्राय यह है कि भाषा में वाक्य की ही सत्ता वास्तविक है। पद या वर्ण की सता काल्पनिक/मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यह सिद्धांत मान्य ठहरता है क्योंकि भाव एवं विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति ही भाषा का प्रयोग है और पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य से ही संभव है। वास्तव में विचार एक प्रकार से अखण्ड प्रवाह है जो कभी अवरूद्ध था। बाधित नहीं होता और ऐसा वाक्य से ही संभव है, पदों से नहीं।

अभिहितान्वयवाद :—

अभिहितान्वयवाद के अनुसार पदों के योग से वाक्य की निष्पति होती है लेकिन उसके लिए तीन चीजे अपेक्षित है।

1. आकांक्षा 2. योग्यता 3. आसत्ति

कुछ भाषा वैज्ञानिक पदक्रम और अन्विति को भी वाक्य की आधारभूत आवश्यकता मानते हैं। इस तरह हम वाक्य की आधारभूत आवश्यकताओं को आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति, पदक्रम और अन्विति इन पांच रूपों में विभक्त करते हैं।

1. आकांक्षा :— आकांक्षा कहते हैं अर्थ की अपूर्णता को। जैसे :— वक्ता के द्वारा लड़का शब्द सुनने पर श्रोता में यह जिज्ञासा होती है कि वक्ता उसके विषय में क्या कहना चाहता हैं और वह जानना चाहता है कि वक्ता द्वारा लड़के के संबंध में क्या कहना अभीष्ट है, इसीलिए आकांक्षा एक प्रकार की मानसिक स्थिति है जिसका महत्व योग्यता की दृष्टि से है। वक्ता एक पद बोलकर संतुष्ट हो सकता है और समझ सकता है कि उसे जो कहने या कह दिया लेकिन श्रोता संतुष्ट नहीं हो सकता। जब तक वक्ता पूरा वाक्य नहीं बोल लेता तब तक श्रोता के मन में अर्थ की अपूर्णता बनी रहती है। इसीलिए श्रोता की आकांक्षा की शांति वक्ता के वाक्य द्वारा अवश्य होनी चाहिए।

2. योग्यता :—

योग्यता से अभिप्राय है— पदों के परस्पर अन्वय में। पदों के अन्वय में दो प्रकार से बाधा पड़ती है—

1. अर्थ या प्रतीति की दृष्टि से

2. पदों के अन्वय की दृष्टि से

एक का संबंध मन से है और दूसरेका व्याकरण से, जैसे :— कोई आदमी यह कहे कि वह किताब से पानी भरता है। इस वाक्य में अर्थ की प्रतीति में जो बाधा पड़ती है उसका संबंध हमारे मन से है क्योंकि हम जानते हैं कि किताब से पानी नहीं भरा जाता। इससे सिद्ध होता है कि वाक्य में पदों का प्रयोग करते समय इसका ध्यान रखना पड़ता है कि वे पद अलग—अलग ही सार्थक न हो बल्कि मिलने पर भी सार्थक बने रहे।

अन्वय की दृष्टि से बाधा वहां होती है जहां व्याकरण के नियमों के अनुसार पदों का विन्यास नहीं होता। जैसे :– लड़का खेलती थी, इस वाक्य में लिंगविषयक अयोग्यता है।

3. आसत्ति :– आसत्ति का अर्थ है पदों की समीपता। वाक्य में प्रयुक्त होने वाले पदों को देश और काल दोनों ही दृष्टियों से परस्पर आसन्न होना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि मैं आज कहूं लड़का कल कहूं खेलता है तो अर्थबोध नहीं होगा।

दूसरे प्रकार की आसत्ति वह है जिस में पद उच्चारित तो होते हैं लेकिन एक–दूसरे से दूर पड़ जाते हैं और हिन्दी की स्वीकृत पद्धति पर नहीं होते। जैसे :– पढ़ा ने था कल अखबार में। इस वाक्य में व्याकरण की स्वीकृत हिन्दी पद्धति की दृष्टि से अन्यथा पदों में आसत्ति का क्रम बाधित हो गया। इसीलिए वाक्य का यह क्रम ठीक है मैंने कल अखबार में पढ़ा था।

4. पदक्रम :– प्रायः सभी भाषाओं में वाक्य रचना के लिए पदों का कोई न कोई क्रम रहता है उस क्रम से ही वाक्य अपने अभीष्ट अर्थ का बोध कराने में समर्थ हो सकता है। जैसे :– मैंने गुरूजी को एक फूलों की माला पहनाई। इस वाक्य में एक शब्द का क्रम गलत हो गया है, इसे माला के साथ होना चाहिए। तब सार्थक होगा जैसे :– मैंने गुरूजी को फूलों की एक माला पहनाई।

5. अन्विति :– वाक्य में व्याकरणिक दृष्टि से सामान्यरूपता होना अन्विति कहलाता है। विशेष और विशेषण में अन्विति, कर्ता और क्रिया में अन्विति, वचन और क्रिया में अन्विति होनी चाहिए। जैसे :– राम पढ़ता है। सीता गाती है। छात्र पढ़ते हैं, लडकियां गाती हैं। संस्कृत में विशेष विशेषण में भी अन्विति होती है। जैसे :– सुंदरः बालकः। सुन्दरी बालिका। सुन्दरम् पुष्पत्। हिन्दी में प्रायः विशेष–विशेषण ऐसी अन्विति कम है। केवल आकारान्त विशेषण में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में परिवर्तन होता है। जैसे – अच्छा–अच्छी, बुरा–बुरी, खोटा–खोटी इत्यादि।

4.2.3 **वाक्य में पद विन्यास की विशेषताओं :–**

वाक्य में पदों का प्रयोग करते समय पद संबंधी तीन विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिए।

1. चयन   2. क्रम 3. अपरिवर्तन

1. चयन :–

किसी भी वाक्य के लिए सबसे पहले पदों का चयन करना होता है। एक ही अर्थ के वाचक अनेक पद होते हैं। लेकिन वक्ता को वाक्य द्वारा जो विवक्षित है उसी भाव को व्यक्त करने वाला शब्द या पद चुनना चाहिए। चयन का एक पक्ष अर्थ का है, दूसरा रूप का। उदाहरण के लिए देखने क्रिया के पर्यायवाची अनेक शब्द हैं, जैसे :– तांकना, झांकना, निहारना, निरखना आदि। लेकिन जनकपुर में जनकपुरी की नारियां राम को देखती नहीं, झांकती नहीं बल्कि निरखती है :–

जुवति भवन झरोखनि लागि

निरखहि राम रूप अनुरागी,

यहां नारियों के हृदय को आंखों से देखने, जांचने, परखने, निरखने का भाव हो रहा है। इसीलिए निरखना शब्द का प्रयोग सर्वथा उचित है।

2. क्रम :–

हिन्दी भाषा वाक्य रचना करते समय पहले कर्त्ता, फिर क्रम और फिर क्रियापद रखा जाता है। जबकि अंग्रेजी में पहले कर्ता, फिर क्रम और अंत में क्रम पद का प्रयोग होता है। संस्कृत ग्रीक और लैटिन भाषाओं में शब्द और विभक्ति मिले–जुले होते हैं इसीलिए वाक्य में उन्हें कहीं भी रखा जा सकता है।

3. अपरिवर्तन :–

अपरिवर्तन को मोटिफिकेशन कहते हैं, Motification अंग्रेजी में कहते हैं, यह दो प्रकार का होता है।

1. ध्वन्यात्मक   2. स्वरात्मक

ध्वन्यात्मक परिवर्तन को संधि कह सकते हैं जब दो ध्वनियां एक–दूसरे के निकट आती है तो परस्पर प्रभावित होकर परिवर्तित हो जाती है। जैसे :– कब तक आओगे। इस वाक्य को जब हम धारा प्रवाह बोलते हैं तो सुनाई पड़ता है कप्तकाओगे, आपरिवर्तन का संबंध मनुष्य के आचार व्यवहार से भी है। अकेले रहने पर हमारा आचार–व्यवहार ओर होता है। लेकिन सभा समितियों में कुछ और। सभा– समितियों में हमारा आचार–व्यवहार दूसरों के आचार–व्यवहार से नियंत्रित और संयमित हो जाता है। पदों की भी यही स्थिति होती है वे दूसरे पदों के सम्पर्क में आ जाने पर बदल जाते हैं।

4.2.4 वाक्य के भेद :–

विभिन्न आधारों पर वाक्य के अनेक भेद होते हैं, साधारण रूप से उन्हें पांच शीर्षकों में विभक्त किया जाता है।

1. क्रिया के आधार पर
2. रचना के आधार पर
3. अर्थ के आधार पर
4. शैली के आधार पर
5. आकृति के आधार

1. क्रिया के आधार पर :– इस आधार पर वाक्य के दो भेद होते हैं

1. क्रियायुक्त वाक्य
2. क्रियाहीन वाक्य।

1. क्रिया युक्त वाक्य :– जिन वाक्यों में क्रिया का प्रयोग रहता है, वे क्रिया युक्त वाक्य कहलाते हैं।

जैसे :– सीता गाती है मोहन पुस्तक पढ़ता है।

2. क्रियाहीन वाक्य :— जो वाक्य क्रिया के बिना ही अपने पूर्ण अर्थ को व्यक्त कर लेते हैं, उन्हें क्रियाहीन वाक्य कहते हैं, जैसे :—

राम : किधर ?

मोहन : आपके पास ही

राम : क्यों, कैसे ?

मोहन : वैसे ही,

2. रचना के आधार पर :—

रचना के आधार से ही व्याकरणिक गठन का आधार भी कहते हैं, इस आधार पर वाक्य के तीन भेद हैं जो इस प्रकार है :—

1. साधारण अथवा सरल वाक्य :— जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय होता है, उसे साधारण वाक्य कहते हैं।

उद्देश्य	विधेय
राम	रोटी खाता है
(संज्ञा वाक्यांश)	(क्रिया वाक्यांश)

2. संयुक्त वाक्य :— जिस वाक्य में दो या दो से अधिक प्रधान उपवाक्य रहते हैं, उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं, जैसे :— जिस दिन न्यूटन ने परमाणु का आविष्कार किया होगा उस दिन शायद उसे यह गुमान नहीं होगा कि बाद के वैज्ञानिक इसे संहारक अस्त्र के रूप में प्रयोग करेंगे।

3. मिश्र अथवा जटिल वाक्य :— जिस वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य होता है और शेष एक या एक से अधिक संज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य और क्रिया विशेषण उपवाक्य होते हैं। जैसे :— उसने कहा कि मैंने वो काम कर दिया जो तुमने कहा था, इस वाक्य में

उसने कहा था – प्रधान उपवाक्य

कि मैने वह काम कर दिया – संज्ञा उपवाक्य

जो तुमने कहा था – विशेषण उपवाक्य,

3. अर्थ के आधार पर :– वाक्य के नौ भेद होते हैं, ये भेद अर्थ, वृत्ति अथवा भाव के आधार पर किया जाता है।

1. विधि वाक्य – वह गाता है।

2. निषेध वाक्य – वह नहीं गाता।

3. आज्ञार्थक वाक्य – तुम गाओ।

4. इच्छार्थक वाक्य – ईश्वर परीक्षा में तुम्हे सफल करें।

5. सम्भावनार्थक वाक्य – शायद आज वर्षा है।

6. संदेहार्थक वाक्य – शायद वह दिल्ली पहुंच गया होगा।

7. प्रश्नार्थक वाक्य – क्या तुम मेरे साथ चाय पिओगे?

8. संकेतार्थक वाक्य – यदि कल तुम आते तो मैं भी तुम्हारे साथ चलता।

9. विस्मयादि बोधक वाक्य – अरे ! तुम आ गये।

4. शैली के आधार पर :– वाक्य के तीन भेद होते हैं,

1. शिथिल वाक्य – जिसमें वाक्य सीधे–सीधे अपनी बात कह देता है,

जैसे :–राम एक अच्छा लड़का है,

2. समीकृत वाक्य :— जिन वाक्यों में वक्ता वैषम्यमूलक होता है, समीकृत वाक्य में होते हैं जो मनुष्य के इच्छा की पूर्ति संगति और संतुलन के साथ करते हैं, जैसे :— यथा राजा तथा प्रजा, जिसकी लाठी उसकी भैंस, समीकृत वाक्य वैषम्यमूलक भी होते हैं, जैसे :— एक तो चोरी दूसरी सीना जोरी, कहां राजा भोज कहां गंगू तेली। ऐसे वाक्य हमारे मन में आनंदपूर्ण वैषम्य पैदा करते हैं, और हमें बहुत जल्दी याद हो जाते हैं।

3. आवृत्तक वाक्य :— इन वाक्यों में श्रोता या पाठक की उत्सुकता जागने की क्षमता होती है, वाक्य की चरम सीमा अंत में आती है। ऐसे वाक्य किसी अच्छे वक्ता और नेताओं के काम के अधिक होते हैं जैसे :—यदि हम अपनी स्वतंत्रता सुरक्षित रखना चाहते हैं और यदि हम यह चाहते हैं कि हमारी सीमाओं की ओर आंख उठाकर देखने की हिम्मत न करे और यदि हम चाहते हैं कि हमारा भारत सर्वथा विकास करें तो हमें आपसी भेदभाव को भुलाकर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाना होगा।

शैली की दृष्टि से वाक्य का विचार वास्तव में काव्य शास्त्र में होता है, लेकिन वाक्य का एक भेद होने के कारण भाषा विज्ञान में भी इस पर विचार किया जाता है, वाक्य का प्रयोग करते समय चिन्तन, उपयुक्त पद का चयन, व्याकरणीक गठन और शब्दों का शुद्ध आचरण आदि की आवश्यकता होती है, भाषा विज्ञान की दृष्टि से वाक्य भाषा की प्रमुख इकाई है, इसीलिए इस पर सबसे अधिक ध्यान देना आावश्यक है।

5. आकृति के आधार पर वाक्य के भेद :—

इस आधार पर वाक्य के दो भेद होते हैं,

1. अयोगात्मक 2. योगात्मक :— इसके तीन भेद हैं 1. श्लिष्ट योगात्मक 2. प्रश्लिष्ट योगात्मक 3. अश्लिष्ट योगात्मक।

इस प्रकार आकृति के आधार पर वाक्य के चार भेद हो जाते हैं।

1. अयोगात्मक :—

ऐसे वाक्य में प्रकृति और प्रत्यय के योग से पदों की रचना नहीं होती, इनमें सभी पद स्वतंत्र होते हैं, और पदों के स्थान से ही इसका व्याकरणिक संबंध जाना जाता है। विश्व में चीनी भाषा अयोग्यात्मक है, जैसे :– चीनी भाषा में –––गो–ता–नी = मैं तुमको मारता हूं। अब हमारी भाषा में :– नी – ता– न्यो = तुम मुझको मारते हो।

2. श्लिष्ट योगात्मक वाक्य :– ऐसे वाक्य में पदों की रचना विभक्तियों के योग से होती है। ये विभक्तियां कभी बाहर की ओर तो कभी अंदर की ओर लगती है। जैसे हिन्दी और संस्कृत में, हिन्दी में – राम पुस्तक पढ़ता है, तो दूसरी ओर संस्कृत में यही वाक्य रामः पुस्तकम् पठति। इसके विपरीत अरबी, फारसी में विभक्तियां अर्न्तमुखी होती है। जैसे :–जैदुन अमन जरअ। (जैद ने अमर को मारा) ।

3. अश्लिष्ट योगात्मक :– ऐसे वाक्यों में प्रत्यय पदों के पूर्व, पदों के मध्य और पदों के अंत में प्रयुक्त होते हैं, जैसे :– अफ्रीका के बाटु परिवार की जुलू भाषा में प्रत्यय प्रायः शब्द के पूर्व में लगते हैं, हिन्दी और संस्कृत में प्रत्यय शब्दों के अंत में लगते हैं। लेकिन उनकी भाषा में प्रत्यय शब्दों के मध्य में लगते हैं।

4. प्रश्लिष्ट योगात्मक :– विश्व में कुछ भाषाओं में अनेक शब्दों के योग से एक ऐसा सामाजिक पद बन जाता है कि वह पद अपने आप में पूरा वाक्य बन जाता है, दक्षिणी अमेरिका की चेकोरी भाषा में ऐसे वाक्य मिलते हैं, जैसे :– नातेन (लाओ), अमोखोल (नाव), निन (हम), इन तीनों शब्दों से बना हुआ वाक्य है नाधो लिनन अर्थात् हमारे पास नाव लाओ। इस प्रकार के प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य बनते हैं।

4.2.5 वाक्य विश्लेषण :–

भाषा विज्ञान की दृष्टि से वाक्य भाषा की लघुतम इकाई है और उसका गठन या उसकी संरचना व्याकरणीक नियमों के अनुसार की जाती है, वाक्य में कुछ अवयव या उपवाक्य होते

हैं। वाक्य विश्लेषण से अभिप्राय है वाक्य का विभाजन करके उसके अवयवों और उपवाक्यों का इस ढंग से अध्ययन करना। जिससे उसका व्याकरणिक संबंध ज्ञात हो जाए।

सामान्य रूप से वाक्य को दो भागों में विभाजित किया जाता है।

1. उद्देश्य   2. विधेय

1. उद्देश्य :— वाक्य में जिसके विषय में कुछ कहा जाता है उसे उद्देश्य कहते हैं,

2. विधेय :— वाक्य में उद्देश्य के विषय में जो कहा जाता है उसे विधेय कहते हैं।

जैसे :— राम विद्यालय से आकर रोटी खा रहा है।

आधुनिक भाषा वैज्ञानिक उद्देश्य को संज्ञा वाक्यांश कहते हैं और विधेय को क्रिया वाक्यांश।

उद्देश्य का विभाजन :— वाक्य में आये हुए उद्देश्य या संज्ञा वाक्यांश को फिर दो भागों में विभक्त किया जाता है।

1 कर्त्ता   2. कर्त्ता का विस्तारक

जैसे :—दशरथ के पुत्र राम ने शिवधनुष को तोड़ा। यदि इस वाक्य का विश्लेषण करना चाहेंगे तो पहले उद्देश्य अथवा संज्ञा वाक्यांश के रूप में हम लिखेंगे दशरथ के पुत्र राम ने विधेय अथवा क्रिया वाक्यांश के रूप में हम लिखेंगे शिव धनुष को तोड़ा, उद्देश्य का विभाजन करते समय हम लिखेंगे राम कर्त्ता है और दशरथ के पुत्र राम का विश्लेषण होने के कारण कर्त्ता का विस्तारक है।

विधेय का विभाजन :— विधेय का विभाजन 14 भागों में किया जाता है।

1. कर्म 2. कर्म का विस्तारक 3. कर्ण 4. कर्ण का विस्तारक 5. सम्प्रदान 6. सम्प्रदान का विस्तारक 7. अपादान 8. अपादान का विस्तारक 9. अधिकरण 10. अधिकरण का विस्तारक 11. पूरक 12. पूरक का विस्तारक 13. क्रिया 14. क्रिया का विस्तारक

उपवाक्यों का विभाजन :– वाक्य तीन प्रकार के होते हैं

1. साधारण या सरल वाक्य 2. संयुक्त वाक्य 3. मिश्रित या जटिल

सरल वाक्य में कोई उपवाक्य नहीं होता संयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक उपवाक्य होते हैं जो सभी प्रधान या स्वतंत्र होते हैं। जिनके बीच संयोजक शब्द होते हैं।

मिश्रित या जटिल वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य होता है, शेष सारे उपवाक्य, अप्रधान अथवा आश्रित उपवाक्य होते हैं। गौण उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं :–

1. संज्ञा उपवाक्य :– संज्ञा उपवाक्य संज्ञा का कार्य करता है और प्रधान वाक्य की क्रिया का कर्त्ता अथवा कर्म बनता है जैसे :– यह मुझे ज्ञात नहीं है कि वे चले गए हैं, यह मुझे ज्ञात नहीं है। प्रधान उपवाक्य है और इसमें वे चले गए हैं, ये संज्ञा उपवाक्य है।

2. विशेषण उपवाक्य :– यह किसी पद का विशेषण बनकर आता है। जैसे :– उसने वह पुस्तक, जो बहुत उपयोगी थी, खरीद ली। उसने वह पुस्तक खरीद ली। ये प्रधान उपवाक्य है। ''जो बहुत उपयोगी थी'' यह विशेषण उपवाक्य है। यह पुस्तक शब्द का विशेषण है।

3. क्रिया विशेषण उपवाक्य :– यह उपवाक्य क्रिया विशेषण का कार्य करता है और क्रिया के स्थान समय, विधि और हेतू (कारण) आदि को सूचित करता है, जैसे :– जब मैं स्टेशन पर पहुंचा तो गाड़ी छूटने वाली थी, ''गाड़ी छूटने वाली थी'' प्रधान उपवाक्य है और ''जब मैं स्टेशन पर पहुंचा'' क्रिया विशेषण उपवाक्य है।

इस प्रकार क्रिया विशेषण उपवाक्य के समय, स्थान, विधि, हेतु, शर्त, तुलना आदि के आधार पर अनेक भेद किये जाते हैं।

4.2.6 अर्थ विज्ञान

हमारे भारतीय काव्यशास्त्र में शब्द को ब्रम्हा कहा गया है। अग्नि पुराण में तो शब्द को एक ऐसी ज्योति कही गई है जो यदि हमें प्राप्त न होती तो यह सारा संसार अंधेरा ही रह जाता। जैसे :–

इदम् अन्धतमः कृत्स्नम् जायेत भुवन त्रयम्।

यदि शब्दाहवयम् ज्योतिः, आसंसारम् न दीपयेत्।।"

अर्थात् यह सार तीनों लोक अंधेरे में ही डूबा रहता यदि शब्द रूपी ज्योति सारे संसार को प्रकाशित न करती।

शब्द का प्राण है अर्थ, जिस तरह प्राणों के बिना हमारे शरीर का कोई मूल्य या महत्व नहीं होता, उसी प्रकार अर्थ के बिना शब्द निष्प्राण होता है। शब्द सार्थक होने पर ही समाज के लिए उपयोगी होते हैं और हमारे जीवन के विकास में सहायक बनते हैं।

भाषा विज्ञान की अर्थ विज्ञान शाखा में भाषा की आत्मा अर्थात अर्थ का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। अर्थ विज्ञान के अंतर्गत अर्थ क्या है? अर्थ का ज्ञान कैसे होता है? शब्द और अर्थ में क्या संबंध है? अनेकार्थक शब्द के अर्थ निर्णय कैसे किया जाता है अर्थ में परिवर्तन क्यों और कैसे होता है? इन सभी पर विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त अर्थ निर्णय के बौद्धिक नियम या शब्दार्थ परिवर्तन संबंधी सिद्धांत कौन–कौन से है? इस प्रश्न का हल ही अर्थ विज्ञान का विषय है। मानव भाषा का अन्यतम लक्षण ही उसकी सार्थकता है इसलिए बिना अर्थ का विचार किये भाषा का अध्ययन अधूरा रहता है।

आचार्य यास्क ने अपने निरूक्त शास्त्र में अर्थ के संबंध में कहा है––– जिस प्रकार बिना अग्नि के शुष्क ईंधन प्रज्जवलित नहीं हो सकता उसी प्रकार बिना अर्थ समझें जो शब्द दोहराया जाता है वह कभी अभीप्सित विषय को प्रकाशित नहीं कर सकता।

अर्थ की परिभाषा और स्वरूप :–

भारतीय विद्वानों ने इस संबंध में प्राचीन काल से ही विचार किया है। कुछ प्राचीन विद्वानों की परिभाषाएं इस प्रकार है :–

1. महर्षि पंतजलि :– अर्थ शब्द की अंतरंग शक्ति का नाम है क्योंकि शब्द शब्द से बहिर्भूत (अलग) होता है जबकि अर्थ अबहिर्भूत (समान) होता है।

2. आचार्य कैयट और नागेश्वर :– ''सभी शब्द जिस प्रवृत्ति निर्मित के लिए अर्थात् जिस वाक्यार्थ का बोध कराने के लिए प्रयुक्त होते हैं, वही प्रवृत्ति निर्मित्त रूप वाक्यार्थ उन शब्दों का अर्थ होता है।''

3. आचार्य भर्तृहरि :– इन्होंने अपने ग्रंथ वाक्य–पदीय में कहा है जिस शब्द के उच्चारण से जिस अर्थ की प्रतीति होती है वही उस शब्द का अर्थ होता है।

4. जयन्त :– जिस शब्द का उच्चारण करते ही उसके बिम्ब के रूप जो कुछ हमारे मन में उभरता है वही उसका अर्थ होता है।

5. कुमारिल भट्ट :– जो अर्थ शब्द के साथ संबद्ध रहता है वही उसका अर्थ होता है।

पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएं :–

1. डॉ. शिलर :– किसी वस्तु का अर्थ उस व्यक्ति पर निर्भर करता है जिसे वह वस्तु अभिप्रेत होती है।

2. डॉ. रसल :– संबंध विशेष को अर्थ कहते हैं क्योंकि किसी शब्द में केवल अर्थ ही नहीं होता अपितु वह अपने अर्थ से संबद्ध रहता है।''

इन परिभाषाओं के विशेषण से ज्ञात होता है कि भारतीय विद्वानों ने प्रतीति को अर्थ स्वीकार किया है और पाश्चात्य विद्वानों ने प्रकरण और संबंध को अर्थ माना है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि अर्थ शब्द की वह आंतरिक शक्ति है जो शब्द के उच्चारित होते ही उस वस्तु की प्रतीति करा देती है जिसके संबंध में वह शब्द बोला या लिखा जाता है।

शब्द एवं अर्थ का संबंध :– शब्द एवं अर्थ में नित्य एवं अभिन्न संबंध माना जा सकता है क्योंकि अर्थ शब्द की आत्मा है और शब्द अर्थ का शरीर शब्द प्रकाशक है और अर्थ प्रकाशक। शब्द कारण है और अर्थ कार्य। भारतीय आचार्यों ने शब्द और अर्थ के संबंध को पारिभाषिक शब्दों में व्यक्त करने के लिए चार वादों की कल्पना की है, जो इस प्रकार है :–

1. व्युत्पतिवाद :– यह वाद शब्द और अर्थ में उत्पादक और उत्पाद संबंध मानता है। ऋग्वेद में कहा गया है ऋषियों ने मन से वाणी को रचा – यत्र धीरा मनसा वाचमकृत। इस वाद से एक बात उभर कर सामने आती है कि अर्थ की स्थिति पहले होती है और शब्द का प्रयोग बाद में। भाषा विज्ञान भी इसी बात का मानता है और व्यावहारिक सत्य भी यही है कि वस्तुओं के रूप में अर्थ पहले से विद्यमान रहता है। हम उसके लिए शब्दों का प्रयोग बाद में करते हैं।

2. ज्ञाप्तिवाद :– इस वाद के अनुसार शब्द अर्थ की ज्ञाप्ति करवाता है इसीलिए इन दोनों में ज्ञाप्य–ज्ञापक संबंध होता है, शब्द ज्ञापक होता है अर्थ ज्ञाप्य। जिस प्रकार उष्णता से सूर्य की ओर दहकता से अग्नि की ज्ञाप्ति होती है उसी प्रकार शब्द से अर्थ की ज्ञप्ति होती है।

3. अभिव्यक्तिवाद :– इसके अनुसार शब्द के द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, इस प्रकार शब्द व्यंजक और अर्थ व्यंग्य। दोनों में व्यंग्य–व्यंजक संबंध है। महर्षि पंतजलि ने इस मत का प्रवर्तन किया है और अपने ग्रंथ महाभाष्य में लिखा है शब्द वह है जो कान से सुना जाता है बुद्धि से ग्रहण किया जाता है, आकाश जिसका स्थान है और जो प्रयोग से अभिज्वलित होता है।

4. प्रतीकवाद :– इसके अनुसार शब्द और अर्थ में प्रतीकात्मक संबंध होता है। कोई भी शब्द अपने अर्थ का प्रतीक माना जाता है। जैसे :– हम लौकिक व्यवहार में कुछ वस्तुओं के कुछ विशेष नाम रख लेते हैं और उनके लिए उन्हीं शब्दों का बार–बार प्रयोग करते हैं और वे शब्द उन वस्तुओं का बोध कराने वाले प्रतीक बन जाते हैं। इस संबंध में भर्तृहरि का कहना है कि

जब किसी शब्द का उच्चारण किया जाता है तब उनका संबंध तीन रूपों में प्रतीत होता है। 1 ज्ञान के रूप में 2. वक्ता द्वारा 3. अभिप्रेत बाह्य पदार्थ के रूप में 3. शब्द के रूप में

अर्थबोध के साधन :—

अर्थ बोध के साधन को संकेत ग्रह भी कहते हैं, भारतीय आचार्यों ने आठ संकेत गृह स्वीकार किए है, इसी को शक्ति ग्रह भी कहते हैं।

"शक्तिग्रहम, व्याकरणोपमान् कोशाप्त वाक्यात् व्यवहारश्च।

वाक्यस्यशेषात् विवृतेवदिन्ति, सिद्धस्य सान्निध्य पदस्य वृद्धा।"

अर्थात् 1. व्याकरण 2. अपमान 3. कोश 4. आप्तवाक्य 5. व्यवहार 6. वाक्यशेष 7. विवृति 8. सिद्ध पद का सान्निध्य।

1. व्याकरण :— अर्थ बोध में व्याकरण सहायक होता है। शब्द के प्रकृति और प्रत्यय का ज्ञान हो जाने पर हमें अर्थबोध में सहायता मिलती हैं, जैसे :— मारूति— मरूत का बेटा, सौमित्र— सुमित्रा का पुत्र, दाशरथि— दशरथ का पुत्र।

2. उपमान :— उपमान का अर्थ है समानता। इसके माध्यम से भी अर्थ बोध का ज्ञान होता है। जैसेः— छोटा बच्चा नील गाय के बारे में पूछता है कि नील गाय क्या होती है तब हम बताते हैं कि गाय के समान ही घास—फूस पर निर्भर रहने वाला जानवर होता है।

3. कोश :— शब्द कोश के अन्तर्गत सभी प्रकार के शब्द अर्थ दिए गए होते हैं। हमें जिस शब्द का अर्थ मालूम नहीं होता हम शब्दकोश से देखकर अर्थ मालूम कर लेते हैं।

4. आप्त वाक्य :— जिन व्यक्तियों ने किसी पदार्थ को प्रत्यक्ष देखकर या पढ़कर या मनन और चिंतन करके उसका अधिकृत ज्ञान कर लिया है। उन व्यक्तियों को उस वस्तु संबंधी ज्ञान का यथार्थ वक्ता कहा जाता है और ऐसे वक्ता के वचनों को हम वाक्य कहते हैं, स्वर्ग, नरक, ईश्वर, देवता आदि के विलय में हम अपने ऋषियों की बात को आधार मानते हैं।

5. व्यवहार :– बचपन से लेकर बड़े होने तक हम जो सीखते हैं वो हम व्यवहार से ही सीखते हैं, जैसे–रोटी, पदार्थ और शब्द मिलकर व्यवहार बन गया। व्यवहार से भी अर्थ बोध का ज्ञान होता है।

6. वाक्य शेष :– वाक्य शेष का अर्थ है–प्रकरण। प्रकरण का सामान्य अर्थ है देशकाल और परिस्थिति तथा संदर्भ, जैसे :– हरि शब्द के 21 अर्थ होते हैं लेकिन जब कोई कहे सशंख चक्रो हरि : विष्णु। इसी तरह सैंधव नमक तथा घोड़े के लिए प्रयुक्त होता है।

7. विवृत्ति :– विवृति का अर्थ है व्याख्या या विवरण प्रस्तुत करना। बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ व्याख्या या विवरण के द्वारा प्राप्त होता है, जैसे :– साहित्य विज्ञान, दर्शन, आनंद, आध्यात्म इत्यादि।

8. सिद्ध पद का सान्निध्य :– कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका अर्थ जानने के लिए उनके साथ वाले प्रसिद्ध पद की अपेक्षा होती है। जैसे :– शार्ंग शब्द का अर्थ है– भवंरा, मृग, धनुष कमल इत्यादि, राम ने शार्ंग पर तीन चढ़ाया। इसका अर्थ धनुष होगा।

4.2.8 अर्थ परिवर्तन :–

अर्थ परिवर्तन का अर्थ विकास भी कहते हैं। इसकी तीन प्रमुख दिशाएं हैं।

1. अर्थ विस्तार 2. अर्थ संकोच 3. अर्थादेश

संसार में कोई भी ऐसी भाषा नहीं है जिसके निरन्तर अर्थ परिवर्तन न होता रहा हो, अर्थ परिवर्तन के निम्नलिखित कारण भाषा वैज्ञानिकों ने स्वीकार किए हैं, जो इस प्रकार हैं :– 1. लाक्षणिक प्रयोग 2. परिवेश का परिवर्तन :– (क) भौगोलिक (ख) सामाजिक (ग) भौतिक 3. विनम्रता प्रदर्शन 4. सुश्राव्यता 5. व्यंग्य 6. भावात्मक बल 7. सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग 8. अज्ञान अथवा भ्रांति 9. शब्दार्थ की अंतर्निहित अनिश्चितता 10. व्यक्ति के अनुसार शब्दों के प्रत्यय में भेद 11. शब्दार्थ के एक तत्व की प्रमुखता 12. गौण की प्रमुखता।

ये सभी कारण वास्तव में लक्षण के ही विस्तार है, विशेष अध्ययन के लिए इनके बारह भाग कर दिए गए हैं :—

1. लाक्षणिक प्रयोग :—

बोलते समय प्रत्येक वक्ता की इच्छा रहती है कि उसकी अभिव्यंजना या अभिव्यक्ति सुन्दर, स्पष्ट एवं प्रभावी हो। इसीलिए प्रायः हम लोग लाक्षणिक अथवा आलंकारिक शब्दों क प्रयोग करते हैं। जैसे :— विद्वान व्यक्ति को वृहस्पति (वृहस्पत), दुष्ट स्त्री को सांपिन, डायन कहते हैं, सीधे—सादे व्यक्ति को गउ कहा जाता है, सुन्दर व्यक्ति को चन्द्रमा ये सब लाक्षणिक और आलंकारिक प्रयोग अर्थ परिवर्तन कर देते हैं।

2. परिवेश का परिवर्तन :—

(क) भौगोलिक परिवेश का परिवर्तन :— वेद में उष्ट शब्द का प्रयोग भैंसे के लिए हुआ है। आर्य लोग जब शीत भूभाग से उष्ण भूभाग की ओर आये तब उन्हें एक नया उपयोगी जानवर मिला जिसके लिए वे उसी पूर्व परिचित उष्ट शब्द का प्रयोग करने लगे जिसका अर्थ है उंट। ये अर्थ परिवर्तन ही भौगोलिक परिवेश परिवर्तन का कारण है। इसी तरह से अंग्रेजी में कॉर्न शब्द का अर्थ इंग्लैण्ड में गेहूं है, स्कॉटलैंड में इसका अर्थ है बाजारा और अमेरिका में इसका अर्थ है मक्का। इस तरह भौगोलिक स्थान भेद से इसके तीन स्थान हो गए।

(ख) सामाजिक परिवेश का परिवर्तन :— समाज भेद के कारण एक ही वस्तु के लिए भिन्न—भिन्न शब्दों का प्रयोग होने लगता है और उनके अर्थ भी बदल जाते हैं, अंग्रेजी में मदर, फादर, ब्रादर सीस्टर आदि शब्दों का जो अर्थ परिवार में है वही अर्थ अन्यत्र नहीं है। अस्पताल में सिस्टर का अर्थ नर्स है, समाज में अपनी बराबर की उम्र की लड़की को सिस्टर कहने का अर्थ है आदरणीय। इसी तरह भाई शब्द परिवार में सगे भाई के लिए प्रयोग किया जाता है। साला बहनोई, जेठ आदि रिश्ते भी भाई शब्द से संबोधित होते हैं, यहां तक भी पति के द्वारा पत्नी को भी कह दिया जाता है————क्यों भई! एक प्याली चाय नहीं दोगी? इसी तरह हिन्दी, संस्कृत के लोग जिसे

पुस्तकया ग्रन्थ कहते हैं, मौलवी उसको किताब कहता है, अंग्रेज उसे बुक कहता है, इसी तरह मां शब्द भी अर्थ बदलता है।

(ग) भौतिक परिवेश का परिवर्तन :– जैसे–जैसे भौतिक साधनों में परिवर्तन होता जाता है वैसे–वैसे वस्तुओं के नाम भी बदलते जाते हैं, पानी पीने कोई बर्तन हमारे यहां रहा होगा जिसे हमें लोटा कहते हैं लेकिन आज हम उसका प्रयोग नहीं करते। सभी लोग गिलास में पानी पीते हैं। गिलास शब्द अंग्रेजी का है जो शीशे के बने बर्तन के लिए प्रयोग किया जाता है लेकिन आजकल इस शब्द का अर्थ विस्तार हो गया है, चांदी, सोना, स्टील, प्लास्टिक इन सबसे बने जलपात्र के लिए गिलास शब्द का प्रयोग होने लगा है।

3. विनम्रता प्रदर्शन :–

विनम्रता सामाजिक शिष्टाचार का अभिन्न अंग है। भाषा के प्रयोग से किसी व्यक्ति के संस्कारों आदि का पता चलता है। लोग इसी शिष्टाचार का पालन करने के लिए प्रायः अपने मकान को कुटिया कहते हैं। जैसे :– आप मेरी कुटिया में पधारे। प्राचीन समय में राजा और बादशाहके लिए अन्नदाता, जहांपनाह आदि संबोधन दिए जाते थे। इसके अलावा भी एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग किया जाता है। जैसे :– मेरे पिता जी आ रहे हैं, इस प्रकार विनम्रता के कारण परिवर्तन हो जाता है।

4. सुश्राव्यता :–

प्रायः लज्जाजनक और छिपाने योग्य तथा अमंगलवाची पदार्थों के लिए हम सुश्राव्य शब्दों का प्रयोग करते हैं ताकि वे सुनने में अच्छे रहे। जैसे :– आधुनिक युग में शौचालय के लिए बाथरूम शब्द का प्रयोग होने लगा। इसी तरह लघुशंका और दीर्घशंका शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार घृणास्पद वस्तुओं को बताने वाले शब्दों में भी परिवर्तन कर दिया जाता है। जैसे :– किसी के सड़े–गले अंगों के लिए बेकार शब्द का प्रयोग किया जाता है।

इसी प्रकार मृत और व्याधि (बीमारी) के वाचक शब्दों की जगह दूसरे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे :– मृत के लिए स्वर्गलाप, बैकुण्ठलाप आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार वैधव्य के लिए चुड़ी फुटना, सुहाग लुटना आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इससे अर्थ परिवर्तन हो जाता है। अंधविश्वास के कारण भी शब्दों में अर्थ परिवर्तन हो जाता है, जैसे :– चेचक की जगह शीतला माता कहना, अपनी पत्नी का नाम लेना या पति का नाम पत्नी के द्वारा न लेना या पति का नाम पत्नी के द्वारा न लेना या उसकी जगह अन्य शब्द का प्रयोग करना,

5. व्यंग्य :–

कई बार ऐसा होता है कि हम व्यंग्य के कारण अन्यायी व्यक्ति को धर्मराज, कंजुस को कर्ण, मूर्ख को भट्टाचारी आदि कहने लगते हैं, इस कारण से भी अर्थ परिवर्तन हो जाता है।

6. भावात्मक बल :–

भावात्मक बल के कारण अनेक शब्दों के अर्थ में परिवर्तन पाया जाता है। जैसे :– बहुत चतुर व्यक्ति के लिए बंगला भाषा में भीषण चतुर कहा जाता है, अत्यंत मूर्ख व्यक्ति के लिए प्रचण्ड मूर्ख कहा जाता है, यहां पर भीषम शब्द भीषणता का वाचक नहीं है बल्कि अपिशयता का वाचक है, इसी प्रकार भावावेश में आकर युवक–युवतियां एक–दूसरे को साला, बेटा या रांड आदि कह देती है, इस प्रयोग में शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।

7. सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग :–

कभी–कभी एक पूरे वर्ग के लिए उसी वर्ग की किसी एक वस्तु का प्रयोग किया जाता है इसे अर्थ विस्तार का ही एक रूप कहते हैं। जैसे :– सब्जी शब्द केवल हरी तरकारियों के लिए होना चाहिए लेकिन इस शब्द से आलू, टमाटर प्याज आदि इन सब का बोध होने लगा है। इसी तरह स्याही शब्द काले रंग के लिए प्रयुक्त होता था लेकिन आज स्याही शब्द का अर्थ है रोशनाई। जलपान शब्द केवल पानी पीने के लिए नहीं बल्कि नाश्ता का वाचक बन गया है।

8. अज्ञान अथवा भ्रांति :–

असुर शब्द पहले देवता का वाचक था। बाद में अ को निषेधार्थक मान लिया गया और सुर का अर्थ देवता हो गया और असुर का अर्थ राक्षस हो गया। इसी प्रकार प्रायः देहातों में उर्दू फारसी के बहुप्रचलित शब्दों को अज्ञान या भ्रांति के कारण कुछ का कुछ कहा जाता है। जैसे :– फजूल को बेफजूल, खालिस का निखालिस कहते हैं।

9. शब्दार्थ की अंतर्निहित अनिश्चितता :–

बहुत सारे शब्द ऐसे हैं जिनके अर्थ सुनिश्चित नहीं होते। ऐसे शब्द प्रायः अमूर्त भावों के वाचक होते हैं। (जैसे :– दुःख, पीड़ा, दर्द, दया, कृपा,अनुकम्पा आदि अमूर्त भावों के वाचक है।) उदाहरण के लिए कष्ट, शोक और दुःख इन तीनों के भाव प्रायः मिलते–जुलते हैं। और हम इनके प्रयोग में गलती कर जाते हैं। जैसे :–किसी की मृत्यु पर हमें शोक होता है, हमें स्वयं को चोट लग जाने पर दुःख होता है। दूसरों के दुःख से हम दुःखी हो जाते हैं। शारीरिक बीमारियों से हमें कष्ट होता है। लेकिन इन शब्दों का प्रयोग प्रायः हम अन्यथा अर्थ में कर देते हैं।

10. व्यक्ति के अनुसार शब्दों के प्रत्यय में भेद :–

मनुष्य के व्यक्तिगत, संस्कार, परिवेश, शिक्षा, जीवन–प्रणाली, माहौल आदि के भेद से शब्दों के भेद भिन्न–भिन्न प्रत्यय मन में उत्पन्न हो जाते हैं। इससे भी अर्थ बदलते हैं। जैसे :– धर्म शब्द का प्रत्यय हिन्दू के लिए अलग अर्थ रखता है और मुसलमान के लिए अलग, ईसाई के लिए अलग, इसी तरह हिंसा शब्द का अर्थ जैनियों के लिए अलग और मुसलमानों के लिए अलग, बनारस में यदि सभा शब्द का प्रयोग किसी हिन्दी प्रेमी के मुंह से किया जाए तो उसका अर्थ होगा–''काशी नागरी प्रचारिणी सभा'' और मद्रास में इसी शब्द का प्रयोग किया जाए तो वही इसका अर्थ होगा –''दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा।''

11. शब्दार्थ के एक तत्व की प्रमुखता :–

कभी–कभी किसी शब्द के पूरे अर्थ को ध्यान में न रखकर उसके किसी एक तत्व को प्रमुखता देकर प्रयोग चल पड़ता है। जैसे :– पुलिस के लिए लाल–पगड़ी, पुलिस केवल लाल पगड़ी ही नहीं पहनती बल्कि खाकी वर्दी भी पहनती है लेकिन लाल शब्द उसके लिए रूढ़ हो गया। लाल झण्डा कम्युनिस्ट पार्टी के लिए, इसी तरह भगवा का अर्थ बी जे पी। इसी तरह स्त्री के लिए वामा शब्द का प्रयोग है। इस प्रकार शब्दार्थ के एक तत्व की प्रमुखता अर्थ परिवर्तन का कारण माना जाता है।

12. गौण की प्रमुखता :–

कई बार ऐसा होता है कि साहचर्य के कारण किसी गौण अर्थ की प्रधानता हो जाती है और इस प्रकार शब्द के अर्थ में परिवर्तन होता है। विदेश से पहले पहल तम्बाकू जब भारत में आया तो सूरत बंदरगाह पर उतरा और वहीं से सारे देश में उसका प्रसार हुआ। इसीलिए सूरत के साहचर्य के कारण इसका तम्बाकू नाम पड़ गया। कश्मीर में केसर की पैदावार होने के कारण संस्कृत में केसर को कश्मीर कहा जाने लगा। इसी तरह छोटे जल जहाज को स्ट्रीम (वाष्प) साहचर्य के कारण स्ट्रीमर कहा जाने लगा।

अर्थ परिवर्तन के इन कारणों के अतिरिक्त कुछ ओर भी कारण पाए जाते हैं। जैसे :–

1. एक शब्द के विभिन्न रूपों का विभिन्न अर्थों में प्रयोग:– प्रायः देखा जाता है कि किसी शब्द तत्सम और तद्भव रूपों में अर्थ की दृष्टि से भेद हो जाता है। जैसे :– खाध में खाद, क्षीर से खीर, भद्र से भद्रा, स्तन–थन। इसी तरह एक शब्द ऐसा है जिसके बहुत सारे अर्थ निकलते हैं। जैसे :– पत्र–पत्ता–पाती–पत्तल इत्यादि।

2. व्यक्तिगत धारणा :–

3. नव निर्माण की प्रवृत्ति :– नये–नये आविष्कार होने पर नई–नई वस्तुओं की रचना होती है और उनके नये–नये नाम रखने की समस्या पैदा होती है। ऐसी स्थिति में उन नई वस्तुओं के

लिए नाम रख जाते हैं वे अपने पुराने अर्थ को छोड़कर नये अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। जैसे :– कमीश्नर के लिए आयुक्त और डिप्टी कमीश्नर के उपायुक्त। हिन्दी के इन दोनों शब्दों का मूल अर्थ कुछ और है और दूसरा अर्थ कुछ और है।

अर्थ परिवर्तन के अनेक व्याकरणीक कारण भी है जैसे :– उपसर्ग :–हार शब्द में जितने भी उपसर्ग जोड़े उतने ही अर्थ बदलता जाएगा।

प्रत्यय :– मनुष्य+ता = मनुष्यता। शब्द में प्रत्यय जोड़ने पर शब्द का अर्थ बदलता है।

लिंग :– स्त्रीलिंग से पुल्लिंग बदलने पर भी शब्दों का अर्थ बदल जाता है। जैसे :– काला, काली

समास :– समास के कारण भी शब्दों के अर्थ में अंतर आ जाता है जैसे :– राजवैद्य और वैद्यराज गृहपति और पतिगृह।

इस तरह अर्थ परिवर्तन का कोई एक तथा सुनिश्चित कारण नहीं है, अर्थ परिवर्तन के आंतरिक और बाह्य, मानसिक और भौतिक अनेक प्रकार के कारण पाए जाते हैं।

4.2.9 अर्थ परिवर्तन की दिशाएं :–

भाषा बहते हुए जल की तरह है। जिस तरह नदी की बहती धारा में पानी के रंग में परिवर्तन होता रहता है उसी तरह समय के साथ–साथ शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता रहता है। इस अर्थ–परिवर्तन को अर्थ विकास भी कहा जाता है। यह अर्थ विकास कहीं तो मूल अर्थ को विस्तृत कर देता है और कहीं उसे संकुचित कर देता है। और कहीं अर्थ को आंशिक रूप में बदल देता है। डॉ. श्यामसुंदर दास ने अर्थ परिवर्तन या विकास की छः दिशाएं बताई है।

1. अर्थापकर्ष 2.अर्थापदेश 3. अर्थोत्कर्ष 4. अर्थ का मूर्तिकरण तथा अमूर्तिकरण 5. अर्थ संकोच 6. अर्थ–विस्तार। लेकिन विचार करने पर अर्थापकर्ष, अर्थापदेश, अर्थोत्कर्ष तथा अर्थ का

मूर्तिकरण और अमूर्तिकरण इन चारों का अर्थोदेश में अंतर्भाव हो जाता है। इसीलिए अर्थ विकास की तीन ही मुख्य दिशाएं हैं :–

1. अर्थ विस्तार 2. अर्थ संकोच 3.अर्थादेश

1. अर्थ विस्तार :–

किसी शब्द के मुख्य अर्थ में परिवर्तन लक्षणा शब्द शक्ति के कारण होता है, जब कोई शब्द पहले सीमित अर्थ में प्रयुक्त होता रहता है और बाद में उसका अर्थ व्यापक हो जाता है तो उसे अर्थ विस्तार कहते हैं। जैसे :– प्रवीण शब्द का अर्थ आरंभ में था.....अच्छी तरह से वीणा बजाने वाला लेकिन आजकल यह शब्द किसी भी काम में निपुणता का वाचक हो गया। इसी तरह कुशल शब्द का पहले अर्थ था कुशलाने वाला। लेकिन आज यह शब्द किस भी चातुर्य या चतुर होने का पर्याय है। तैल या तैल शब्द पहले तिल से प्राप्त होने वाले तरल पदार्थ को कहते थे लेकिन आजकल सरसों तीली, आंवला आदि के तेल के लिए भी यह शब्द प्रयोग किया जाता है।

कई बार अर्थ विस्तार के कारण व्यक्तिवाचक संज्ञाएं जातिवाचक संज्ञाएं बन जाती है। जैसे :– विभीषण, नारद, जयचंन्द्र।

2. अर्थ संकोच :–

जब कोई शब्द पहले विस्तृत अर्थ का वाचक होता है लेकिन बाद में सीमित अर्थ का वाचक हो जाता है तो इसे अर्थ संकोच कहते हैं, जैसे :– मृग शब्द पहले सभी जंगली जानवरों, पशुओं के लिए प्रयुक्त होने लगा। इसी तरह गो शब्द चलने वाले के लिए प्रयुक्त होता था। लेकिन आजकल केवल गाय शब्द के लिए प्रयोग किया जाता है, इसी प्रकार वर शब्द, घृणा, मंदिर शब्द आदि के अर्थ सीमित या संकुचित हो गए हैं।

3. अर्थादेश :–

जब किसी शब्द का मुख्य अर्थ पूर्ण रूप से लुप्त हो जाए और उसके स्थान पर कोई नया अर्थ प्रचलित हो जाए तो उसे अर्थादेश कहते हैं। जैसे :– असुर शब्द का अर्थ पहले देवता था और कालांतर में इसका अर्थ राक्षस हो गया।

सुविधा की दृष्टि से हम इसे चार भागों में विभाजित कर सकते हैं:–

1. अर्थोत्कर्ष :– जब शब्द का मूल अर्थ निम्नता सूचक हो और उसका अर्थ लोप हो जाए और उसकी जगह उसका नया अर्थ उत्कृष्टता सूचक हो जाए उसे अर्थोत्कर्ष कहते हैं। जैसे :– कर्पट यह शब्द संस्कृत में फटे–पुराने कपड़ो के लिए प्रयुक्त होता रहा। लेकिन आजकल इसका रूप कपड़ा बन गया है जो अच्छे कपड़ों के लिए प्रयोग किया जाता है। इसी तरह साहस यह शब्द पहले बुरे कामों में हिम्मत दिखाने के लिए प्रयुक्त होता था। जैसे :– चोरी, डाका इत्यादि। लेकिन आजकल इसका प्रयोग अच्छे और सराहनीय कार्यों के लिए किया जाता है। इसी तरह मुग्ध, महाराज, ठाकुर, आदि शब्द इसके उदाहरण है।

2. अर्थापकर्ष :– जब किसी शब्द का अर्थ पहले अच्छे के लिए और बाद में उसके नये अर्थ में गिरावट आ गई हो उसे अर्थापकर्ष कहते हैं। जैसे :– महाजन शब्द श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता था, आजकल इसका अर्थ है ब्याज पर पैसा देने वाला या सूदखोर। इसी तरह से स्वर्गवास, गंगालाभ आदि शब्द पहले अच्छे अर्थ के लिए प्रयुक्त होते थे लेकिन आजकल इनमें गिरावट आ गई है।

3. अर्थ का मूर्तिकरण :– जब किसी शब्द का पहले अर्थ अमूर्त हो और बाद में इस अर्थ का लोप हो जाए और इसके स्थान पर कोई मूर्त अर्थ प्रचलित हो जाए उसे अर्थ का मूर्तिकरण कहा जाता है। जैसे :– जनता शब्द पहले भाववाचक था जिसका अर्थ था मनुष्य का भाव लेकिन आज इसका अर्थ है जनसाधारण। इसी प्रकार वसन, भवन आदि शब्द अपना अमूर्त अर्थ छोड़कर मूर्त अर्थ के द्योतक बन गए हैं। वसन–रहना और वसन–कपड़ा, भवन–होना, आजकल भवन–मकान, इस प्रकार अर्थ का मूर्तिकरण होता है।

4. अर्थ का अमूर्तिकरण :–जब पहले किसी शब्द का अर्थ मूर्त रहा हो और बाद में वह अर्थ लुप्त हो जाए तथा उसके स्थान पर कोई अमूर्त अर्थ प्रचलित हो जाए उसे अर्थ का अमूर्तिकरण कहते हैं। जैसे :– कपाल और ललाट शब्द पहले खोपड़ी के वाचक थे लेकिन आजकल इन दोनों का अर्थ भाग्य भी है। इस प्रकार अर्थ का अमूर्तिकरण होता है।

4.3 सारांश :–

भाषा में वाक्य का विशेष महत्व है। भाषा विज्ञान के अंतर्गत वाक्य विज्ञान का कार्य क्षेत्र का विषलेशण व उनके प्रकार जैसे– सरल वाक्य, मिश्र वाक्य, संयुक्त वाक्य, को वर्गीकृत किया है, इसके साथ ही अर्थ की परिभाषा को बताते हुए अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया भाषा की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। अर्थ परिवर्तन की दिशाओं के अंतर्गत चारों दिशाओं जैसे– अर्थ विस्तार, अर्थ संकोच, अर्थादेश और अर्थाकर्ष उनके कारणों के साथ इस इकाई में हिंदी के संदर्भ में शब्द और अर्थ के परस्पर संबंध की जानकारी दी गई है।

4.4 संकेत शब्द :–

वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान, अन्विताभिधानवाद, विलोमता, पर्यायता

4.5 स्वः मूल्यांकन हेतु प्रश्न :–

प्रश्न 1– वाक्य की परिभाषा देते हुए वाक्य–विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र–पर एक लेख लिखिए।

प्रश्न 2– हिंदी वाक्यों के प्रमुख प्रकार कौन–कौन से हैं? विस्तार से बताइए। (उदाहरण देना जरूरी है)

प्रश्न 3– अर्थ की परिभाषा देते हुए शब्द और अर्थ के परस्पर संबंध पर विचार कीजिए।

प्रश्न 4– अर्थ परिवर्तन की दिशाओं पर एक लेख लिखिए।

प्रश्न 5– निम्न पर टिप्पणी करे।

क– विरोधवाची संबंध बोधक अव्यय।

ख – अर्थ संकोच

4.6 संदर्भ सामग्री :–

1. भाषा और भषिकी, देवीशंकर द्विवेदी, राधाकृष्ण, दिल्ली, 1993
2. भाषा विज्ञान की भूमिका, देवेन्द्रनाथ शर्मा, राधाकृष्ण, 1989
3. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, किताब महल इलाहाबाद, 1997
4. मानक हिन्दी का संरचनात्मक भाषा विज्ञान, ओमप्रकाश भारद्वाज, आर्यबुक डिपो, दिल्ली
5. भाषाविज्ञान और मानक हिन्दी, नरेश मिश्र, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1993
6. आधुनिक भाषाविज्ञान, कृपाशंकर सिंह एवं चतुर्भुज सहाय, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1997
7. आधुनिक भाषाविज्ञान, राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1996
8. भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र, कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1997
9. हिन्दी भाषा : उद्गम और विकास, उदयनारायण तिवारी, भारती भंडार, इलाहाबाद, 1961
10. हिन्दी भाषा : भोलानाथ तिवारी, किताब महल, दिल्ली, 1991
11. हिन्दी : उद्भव और विकास, हरदेव बाहरी, किताब महल, इलाहाबाद, 1965
12. हिन्दी भाषा का विकास, देवेन्द्रनाथ शर्मा एवं रामदेव त्रिपाठी, राधाकृष्ण, दिल्ली, 1971
13. हिन्दी भाषा : रूप विचार, सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण', चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 1962
14. देवनावरी देवीशंकर द्विवेदी, प्रशांत प्रकाशन, कुरुक्षेत्र 1990
15. देवनागरी लेखन तथा हिन्दी वर्तनी, लक्ष्मीनारायण शर्मा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 1976
16. भाषाविज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा, द्वारिका प्रसाद सवसेना, मीनाक्षी प्रकाशन दिल्ली, 1976
17. भाषा शिक्षण, रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, सहकारी प्रकाशन, दिल्ली, 1981

18. भाषा और भाषाविज्ञान, नरेश मिश्र, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2001
19. आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धान्त, रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998
20. अनुवाद विज्ञान, राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002
21. अनुवाद विज्ञान और सम्प्रेषण, हरिमोहन, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1984
22. अनुवाद विज्ञान और आलोचना की नयी भूमिका, रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 1980